धर्मायण

मूल्य : 45 रुपये
अंक 129
चैत्र,
2080 वि. सं.

(धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना की पत्रिका)

रामचरितमानस अंक

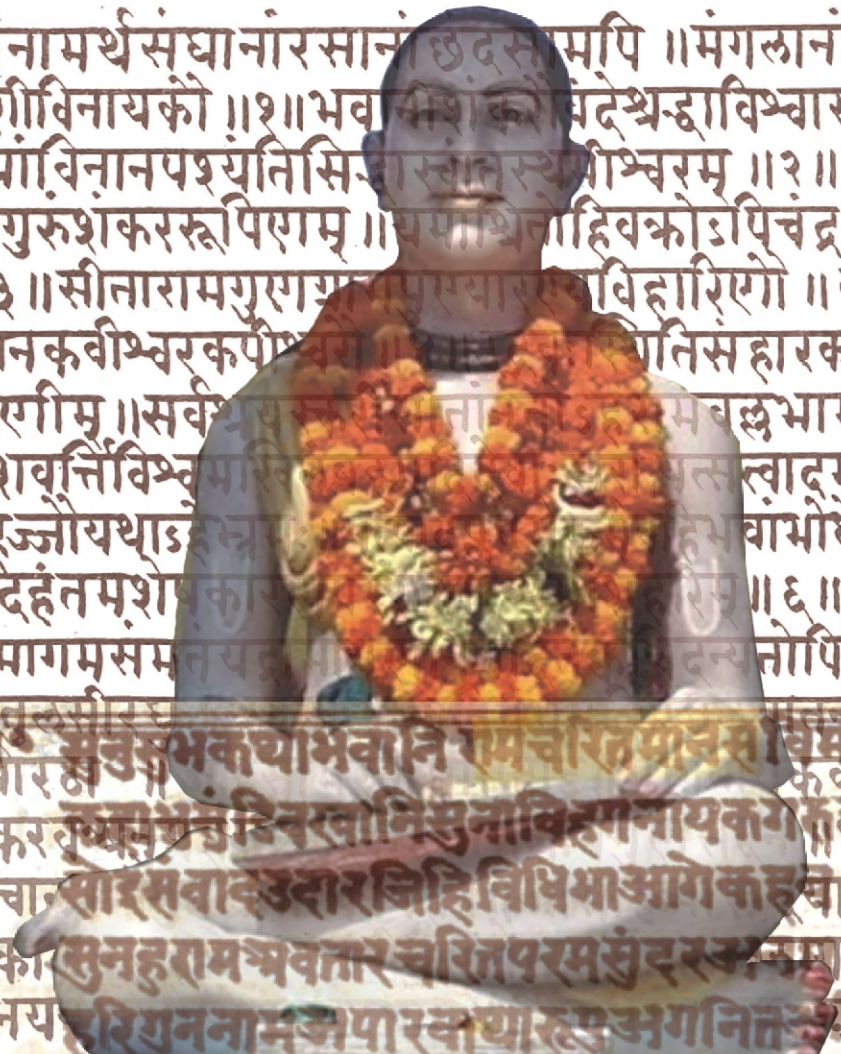

महावीर मन्दिर परिसर में स्थापित तुलसीदासजी की प्रतिमा

धर्मायण

Title Code–BIHHIN00719

आलेख –सूची

1. रामचरितमानस की दुर्व्याख्याएँ	- सम्पादकीय	3
2. 'मानस' में समन्वयवाद	- श्री महेश प्रसाद पाठक	6
3. "पूजिअ बिप्र सील गुन हीना" : एक विमर्श	- डॉ. राधानंद सिंह	16
4. "सकल ताड़ना के अधिकारी" : एक विमर्श	- डॉ. जितेन्द्रकुमार सिंह 'संजय'	23
5. सबके राम एक हैं	- डॉ. नरेन्द्रकुमार मेहता	31
6. मॉरिशस में रामायण	- डॉ. श्यामसुन्दर घोष	37
7. बनारस की रामलीला का वृत्तान्त	- अंगरेजी से अनूदित	45
8. 'हनुमद्-दीक्षा' : प्रसिद्ध हनुमान-चालीसा अनुष्ठान	- श्री अंकुर नागपाल	50
9. 'रामचरितमानस' से शिक्षा	- डॉ. विजेन्द्र कुमार राय	56
10. 'रामचरितमानस' की सामाजिक व राष्ट्रीय सर्वव्यापकता	- डॉ. राजेन्द्र राज	62
11. नवजीवन और वसन्त- ऋतूनां कुसुमाकरः	- श्रीमती रंजू मिश्रा	67
12. बौद्ध साहित्य में रामकथा	- आचार्य सीताराम चतुर्वेदी	70
13. अवध क्षेत्र में19वीं शती की विवाह-विधि-	रीतिरत्नाकर से	72
14. मन्दिर समाचार (फरवरी, 2023ई.)		76
15. व्रत-पर्व- चैत्र, 2079-2080 वि. सं.		78
16. रामावत संगत से जुड़ें		80

पत्रिका में प्रकाशित विचार लेखक के हैं। इनसे सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं है। हम प्रबुद्ध रचनाकारों की अप्रकाशित, मौलिक एवं शोधपरक रचनाओं का स्वागत करते हैं। रचनाकारों से निवेदन है कि सन्दर्भ-संकेत अवश्य दें।

धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना की पत्रिका

अंक 129

चैत्र, 2080 वि. सं.

8 मार्च- 6 अप्रैल, 2023ई.

सम्पादक

भवनाथ झा

पत्राचार :

महावीर मन्दिर,
पटना रेलवे जंक्शन के सामने
पटना–800001, बिहार
फोन: 0612–2223798
मोबाइल: 9334468400

E–mail:

dharmayanhindi@gmail.com

Website:

www.mahavirmandirpatna.org/dharmayan/

Whatsapp:

9334468400

मूल्य : 45 रुपये

पाठकीय प्रतिक्रिया

(अंक संख्या 128, फाल्गुन, 2079 वि.सं.

'धर्मायण' का 'संवत्सर विशेषांक' मिला। सबसे पहले तो कवर का चित्र ही इतना दार्शनिक देख रहा हूँ कि सारी विषयवस्तु स्पष्ट हो गयी है। विष्णु का सुदर्शन चक्र चलता है तो उसी गति से कल्प, युगादि निःसृत होते हैं। उसकी परिधि की और बढते जाना यदि सृष्टि है तो केन्द्र की ओर बढना मोक्ष का पथ। पं. गोविन्द झा ने तो जैसे हमें आइना दिखा दिया है कि हमने कैसे अपनी परम्परा खो दी है और आज भी लकीर के फकीर बन गये हैं। आयुर्वेद में तो वास्तव में सबकुछ सूर्य से ही चलता है, प्रकृति ही रोग भी उत्पन्न करती है और वही रोग मिटाने के लिए उपाय देती है। सचमुच यदि हम आयुर्वेद के कथनानुसार संवत्सर के आधार पर आहार-विहार ठीक रखें तो हमें कोई असुविधा नहीं होगी। डॉ. मयंक मुरारी ने अपना कैनवास बहुत बड़ा ले लिया है पर उसे निभा नहीं सके हैं। आलेख चुस्त होना चाहिए। ग्रन्थांश और आलेख में यह अन्तर होता है। एक महत्त्वपूर्ण आलेख है- डॉ. गुंजन अग्रवाल का। उन्होंने सिद्ध कर दिया है कि वर्तमान में हम जो इतिहास पढ़ रहे हैं, उसका कालानुक्रम कपोल कल्पना पर आधारित है। धन्यवाद भाई! सम्पादकीय में अनेक नई जानकारियाँ हैं और इसी प्रकार डॉ. ममता मिश्र 'दाश' ने उड़ीसा की स्थानीय संवत्सर गणना पर पूरा प्रकाश डाला है, जो इतिहास के शोधार्थियों के लिए महत्त्वपूर्ण है।

आपको यह अंक कैसा लगा? इसकी सूचना हमें दें। पाठकीय प्रतिक्रियाएँ आमन्त्रित हैं। इसे हमारे ईमेल dharma-yanhindi@gmail.com पर अथवा ह्वाट्सएप सं.–+91 9334468400 पर भेज सकते हैं।

'धर्मायण' का अग्रिम अंक **रामलीला विशेषांक** के रूप में प्रस्तावित है। 19वीं शती के प्रकाशित पुस्तकों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह रामलीला भारत के हर क्षेत्र में किसी न किसी रूप में होती थी। मैंने विभिन्न क्षेत्रों के लोगों से बात की है तो उनकी स्मृति में आज भी रामलीला का वह रूप आज तक है। हमारा प्रस्ताव है कि उन्हें लिपिबद्ध किया जाये।

वर्षगणना सें सम्बन्धित इतनी सारी जानकारियाँ एकत्र कर पाठकों तक पहुँचाने के लिए सम्पादक झाजी अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। विश्वास है कि 'धर्मायण' के अंक भविष्य में एक प्रामाणिक पत्रिका सिद्ध होगी और सनातन धर्म को अपनी ऊँचाई पर पहुँचाने में सहायक सिद्ध होगी।

शेखर अग्रवाल
कैंप रोड, भुज, गुजरात।

रामचरितमानस की दुर्व्याख्याएँ

सम्पादकीय

—भवनाथ झा

हमारा भारत विविध संस्कृति, परम्परा तथा पारिस्थितिकी से युक्त विशाल राष्ट्र है। यहाँ पूर्व से पश्चिम तक के प्रदेशों को आलोकित करने के लिए सूर्य को भी 30 मिनट का समय लग जाता है। जीवन शैली को धर्म मानते हुए, सामान्य धर्म, विशेष धर्म तथा परम धर्म का पालन करते हुए हमारे पूर्वज समाज को निःश्रेयस की सिद्धि के लिए **"चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः"** को मानते हुए अपना जीवन व्यतीत करते रहे हैं। हमारे ग्रन्थों में अर्थ का विधान तथा अनर्थ का परिहार समान रूप से किया गया है। अनर्थ का परिहार प्रायश्चित्त के रूप में विहित है और उस प्रायश्चित्त को धर्म नहीं माना गया है, क्योंकि वह केवल पापनिवृत्ति का मार्ग है। हम झूठ बोलना छोड़ेंगे तभी तो सत्य बोल सकेंगे। इस अनर्थ के परित्याग तथा अर्थ के ग्रहण हेतु तीन प्रकार के ग्रन्थों की रचना हुई- पितृसम्मित, मित्रसम्मित तथा कान्तासम्मित

इन तीनों प्रकार के वाङ्मय का एक ही उद्देश्य है- अनर्थ का परिहार और अर्थ की सिद्धि। अतः ये तीनों उपदेश हुए। पितृसम्मित वाङ्मय में वेद तथा स्मृतियाँ संकलित हैं। पुराण एवं आगम मित्रसम्मित हैं तथा काव्यादि कान्तासम्मित। पितृसम्मित के उपदेश पिता के समान होते हैं, उनमें अनुशासन है; वे सीधे शब्दों में कहे गये हैं। उनके अर्थ को जानने के लिए हमें केवल कोष, व्याकरण आदि ग्रन्थों का सहारा लेना पड़ता है। इसमें केवल अभिधा है। हर शब्द का कोष और व्याकरण से सम्मत अर्थ होता है। यह पितृसम्मितोपदेशात्मक वाङ्मय की अपनी शैली है।

पुराण की शैली अलग है। वहाँ मित्र के समान उपदेश हैं, कथाएँ हैं, उदाहरण हैं। पूर्वकाल में उसने किया था तो उसका कल्याण हुआ, तुम करोगे तो तुम्हारा भी कल्याण होगा, नहीं करोगे तो कल्याण नहीं होगा। करो या न करो, तुम्हारी मर्जी। मित्र उपदेश देकर चला जाता है, उपदेश ग्रहण करनेवाला उसका पालन करता है या नहीं करता है, वह देखने भी नहीं आयेगा। वह उदासीन हो जाता है। इस प्रकार के वाङ्मय में अर्थ ग्रहण के लिए अभिधा तथा लक्षणा दो प्रकार की शब्दशक्तियाँ लगानी पड़ती है।

जब कोष और व्याकरण का अर्थ बाधित हो जाए तब उससे सम्बन्धित अन्य अर्थ की प्रतीति जिस शक्ति से हो, उसे लक्षणा कहते हैं। 'गंगा में झोपड़ी है'- इसका मुख्य अर्थ सम्भव नहीं क्योंकि गंगा तो जल प्रवाह है, उसमें भला झोपड़ी कैसे हो! तब लक्षणा शक्ति से अर्थ होगा- गंगा के तट पर झोपड़ी है। सम्बन्ध है- निकटता और प्रयोजन है- शीतलता,

पवित्रता आदि। तो हम पुराणों की भाषा का अर्थ लगाने के लिए, उसका तात्पर्य समझने के लिए अभिधा और लक्षणा दोनों शब्दशक्तियों का प्रयोग करते हैं।

काव्य, नाटक आदि में उपदेश तो होते ही हैं- राम के समान आचरण करना चाहिए, रावण के समान नहीं। दूसरे की पत्नी के अपहरण के कारण रावण मारा गया और दूसरे की अपहृता पत्नी को छुड़ाकर राम पूज्य बने। कंस ने अत्याचार किया; उस अत्याचारी कंस को मारकर कृष्ण पूज्य बने। अच्छे, कल्याणकारी कार्य करनेवाले यहाँ सदा पूजनीय होते हैं। वाल्मीकि रामायण, महाभारत एवं उनसे उपजीवित काव्य कान्तासम्मित उपदेश की श्रेणी में आये, जहाँ अभिधा, लक्षणा और व्यंजना तीनों शब्दशक्तियों का प्रयोग हम अर्थावबोध के लिए करते हैं।

व्यंजना की शक्ति विशाल है। वहाँ अर्थ लगाने के लिए प्रसंग का देखना आवश्यक है। 'सूर्य डूब गया'- यह एक छोटा-सा वाक्य विभिन्न प्रकार का अर्थ प्रदान करेगा। वहाँ हमें निर्णय करना होगा कि कौन बोल रहा है, किसे सुना रहा है, क्यों सुना रहा है, सुनाते समय उसकी आबाज कैसी है, वह ऐंठकर तो नहीं बोल रहा है? एक चोर दूसरे कहेगा तो वहाँ अर्थ होगा- चलो अब चोरी करने चलें। किसी महत्त्वपूर्ण व्यक्ति की मृत्यु का प्रसंग होगा तो उसका अर्थ होगा कि वह मृत व्यक्ति अति प्रभावशाली था। तो हम व्यंजना शक्ति से अर्थानुसंधान करने में बहुत सावधान होते हैं।

काव्य आदि की पंक्तियों का अर्थ लगाने के लिए हमें अभिधा, लक्षणा और व्यंजना इन तीनों शब्द शक्तियों का प्रयोग करना होगा। काव्य में हम कहते हैं- आओ, आओ!; उसका अर्थ होता है- मत आओ!

रोहिणीदत्त गोसाँई कहते हैं- 'अरी दुर्बुद्धिरूपी हथिनी मेरे चित्त के जंगल में आओ आओ! देखो, यहाँ कृष्ण की भक्तिरूपी सिंहनी आया-जाया करती है!' अतः व्यङ्ग्यार्थ है कि अरी हथिनी आओगी तो तेरी मौत निश्चित है।

एक प्राचीन कवि ने कहा- 'अरे पंडितजी, अब आप यहाँ निःशंक होकर घूम सकते हैं, क्योंकि जिस कुत्ते के स्पर्श से आपको भय था, उसे आज गोदावरी नहीं के तट पर रहनेवाला सिंह खा गया!'

अब आप सोचिए, विधि से निषेध और निषेध से विधि का भी कथन होता है काव्य में।

'रामचरितमानस' अन्ततः एक प्रबन्ध काव्य है। इसमें कथानक है, वार्तालाप है, प्रसंग हैं। इसमें यदि किसी पंक्ति का अर्थ लगाने में हम अभिधा का प्रयोग करते हैं तो हमें ध्यान रखना होगा कि लक्षणा तथा व्यंजना का भी प्रसंग उपस्थित हो सकता है। यह स्मृति-ग्रन्थ नहीं है, यह वेद नहीं है, यह पुराण नहीं है। यहाँ पूर्णतः काव्य की उत्कृष्ट शैली है। इस शैली में उपदेश किये गये हैं, राम के आदर्श को समाज में प्रसारित किया गया है।

आज कम्प्यूटर के माध्यम से मशीनी अनुवाद होता है, शब्द को एक भाषा से दूसरे भाषा में बदल दिया जाता है; किसी शब्द को प्रतिबन्धित कर पूरे अनुच्छेद को प्रतिबन्धित शब्द से युक्त मानकर उसे 'ब्लैक-लिस्टेड' कर दिया जाता है। मैंने एक आलेख लिखा- 'क्या तंत्र-मंत्र घृणा की वस्तु है?' इसे फेसबुक पर डाला। फेसबुक ने पूरे पोस्ट को प्रतिबन्धित कर दिया! मुझे बतलाया गया कि 'घृणा' शब्द सोसल साइट पर प्रतिबन्धित है। उस पोस्ट में मैने क्या लिखा था, उक्त प्रतिबन्धित शब्द का व्यवहार किस अर्थावबोध के लिए किया गया था, उसे देखने पढ़ने की जरूरत नहीं, बस एक शब्द से पूरा प्रकरण प्रतिबन्धित। आखिर वह मशीन है!

आज इसी मशीन की शैली में रामचरितमानस की दुर्व्याख्याएँ हो रही हैं। उद्देश्य स्पष्ट है- समाज को तोड़ना। जिस रामचरितमानस ने मॉरिशस गये गिरमिटिया मजदूरों को अपनी मातृभूमि से जोड़कर रखा, समाज के सभी वर्णों और वर्गों को एकसूत्र में बाँधकर रखा, उसका भी आज 'मशीनी विवेचन' हो रहा है। हमें सावधान रहना है!

यदि हम देखें तो हमारे समाज को पहली बार 1795ई. में अंगरेजों ने तोड़ा, फिर भी हम 1857 की लड़ाई तक एक रहे। उसके बाद हमें तोड़ने का उससे भी भयानक तरीका अपनाया गया। वही क्रम आज भी जारी है। यह कहने में कोई संकोच नहीं कि अपनी रचनाकाल के बाद सभी धार्मिक धाराएँ 'रामचरितमानस' और 'हनुमानचालीसा' में समा चुकी हैं। उसे हम पवित्र धर्म-ग्रन्थ मान चुके हैं।

रामचरितमानस में क्या है, कैसी पंक्ति है, कैसी शैली है, यह तो बाद की बात है। हमें देखना चाहिए कि समाज पर इसका क्या प्रभाव पड़ा? 19वीं शती के कई दस्तावेज हैं जो दिखाते हैं कि रामचरितमानस के पारायण के साथ रामलीला होती थी। बनारस की रामलीला में जैकेटवाले साहिबान भी मुखौटे लगाकर शोभायात्रा में भाग लेते थे। गाँव की एक अनपढ महिला रामलीला देखने जाती थी। बहुत सारी बातें हैं, जिनका विवेचन 'धर्मायण' के इस अंक में किया गया है।

***

लेखकों से निवेदन

'धर्मायण' का अग्रिम अंक रामलीला विशेषांक के रूप में प्रस्तावित है। 19वीं शती के प्रकाशित पुस्तकों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह रामलीला भारत के हर क्षेत्र में किसी न किसी रूप में होती थी। रामलीला के लिए अनेक रचनाएँ भी हुई हैं। मैंने विभिन्न क्षेत्रों के लोगों से बात की है तो उनकी स्मृति में आज भी रामलीला का वह रूप आज तक है। हमारा प्रस्ताव है कि उन्हें लिपिबद्ध किया जाये। साथ ही उन परिस्थितियों पर विचार किया जाना चाहिए कि क्यों रामकथा का यह रूप गायब हुआ, और उसे क्या Restore किया जा सकता है? यह विचारणीय है कि रामलीला लोक-संग्रह तथा लोक-निर्देशक की भूमिका निभाती रही है। उन दिनों लोग रामकथा से जिस तरह जुड़े थे, उस संयोजन से आज समाज दूर भाग रहा है।

लगभग 40 वर्ष पूर्व तक यह परम्परा कायम रही है। यहाँ तक कि मैं अपने बचपन में मधुबनी जिला के रुपौली गाँव में 20-25 दिनों की रामलीला देख चुका हूँ। यह अगहन महीने में विशेष रूप से होती थी। लगभग 20 लोगों की मण्डली होती थी। प्रत्येक दिन रात्रि में मंचन के बीच अगले दिन के लिए 'माला उठाने' की घोषणा होती थी। माला उठाने का अर्थ था- अगले दिन पूरी मंडली के लिए भोजन सामग्री का प्रबन्ध करना। लोग खुशी-खुशी अपनी इच्छा प्रकट करते थे। समाज के सभी वर्गों के लोग लगभग 10 बजे रात तक रामलीला देखते थे। बीच बीच में नाटक भी होते थे- शीत-बसन्त, सुल्ताना डाकू, राजा भरथरी आदि।

लेखकों से निवेदन है कि अपने-अपने क्षेत्र में विगत शती में किस प्रकार रामलीला का आयोजन होता था, उसका संस्मरण लिखकर प्रेषित करें। वर्तमान युवा पीढ़ी के लिए आपका वह लेखन मार्ग निर्देश करेगा।

***

'मानस' में समन्वयवाद

श्री महेश प्रसाद पाठक
"गार्ग्यपुरम्" श्रीसाईं मन्दिर के पास, बरगण्डा,
पो– जिला–गिरिडीह, (815301), झारखण्ड,
Email: pathakmahesh098@gmail.com

भारतीय परम्परा में कट्टरता कभी नहीं रही, तभी तो उपासना एवं धर्म के इतने रूप भारत में विकसित हो सके। सीधे शब्दों में कहा जाए तो बहुदेववाद इसी सर्वसमन्वय का परिणाम रहा। सबके अपने-अपने इष्टदेव हुए, जिनका नाम तक गुप्त रखने की परम्परा चली। सभी उपास्य देवों को समान स्थान मिला, सबके बीच अद्वैत की भावना भी विकसित हुई। इस समन्वय से ही एकेश्वरवाद प्रेरित हुआ। हमारे सन्तों ने इस समन्वय को पूरी निष्ठा से निभाया। सन्तकवि तुलसीदास ने अपनी लेखनी से इसे व्यापक रूप दिया तथा जन-जन तक फैलाया। रामचरितमानस में शिव -पार्वती-राम-सीता इन सब के बीच अद्भुत समन्वय स्थापित किया गया। यही कारण है कि सम्पूर्ण भारत की जनता तथा उस काल के विद्वानों ने इसे स्वीकार किया। तुलसीदास के बारे में लौकिक/अलौकिक कथाएँ प्रचलित हुईं। वे कथाएँ सत्य हैं या नहीं, कहा नहीं जा सकता है, किन्तु इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि इस प्रकार की कथाएँ किसी सामान्य व्यक्ति के विषय में रची नहीं जातीं हैं। आइए पढ़ते हैं गोस्वामीजी का समन्वयवाद।

भक्तिशाखा की मूलभित्ति के रूप में और जनसामान्य की भाषा में 'श्रीरामचरितमानस' की रचना साहित्य-जगत् की अतुलनीय कृति कही गयी है। जो व्यक्ति जिस सदुद्देश्य से श्रीरामचरितमानस को पढ़ता है, उसे तत्सम्बन्धित समाधान भी मिलता है। तात्पर्य है इसमें राजधर्म, गृहस्थधर्म, पातिव्रत्यधर्म, भ्रातृधर्म आदि के अतिरिक्त भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सदाचार, नैतिकता आदि जैसे मानवीय मूल्यों पर आधारित प्रसंगों के साथ रस, छन्द, काव्य-प्रबन्ध जैसे अनमोल साहित्यिक -विधान भी देखने को मिलते हैं।

इसकी महत्ता के बारे में यही कहा जा सकता है कि आज भी ग्रामीण इलाके में जो इसका पठन कर लेते हैं, उन्हें साक्षर मान लिया जाता है। इतनी सरल भाषा वाली रामचरितमानस में भी कहीं-कहीं ऐसे भी प्रसंग हैं, जिनके गूढ़ार्थ का चिन्तन-मनन आज भी साहित्य-विशेषज्ञ करते रहते हैं। आजकल तो ऐसी भी स्थिति बन गयी है, जो लोग इसका सही अर्थ नहीं कर पाते, अपने छद्म-पाण्डित्य का प्रदर्शन एवं कुतर्क बुद्धि की पुष्टि औरों से करवाते हैं और सामाजिक विद्वेष फैलाने से नहीं चुकते। वे यह नहीं जानते कि 'मानस' एक सन्तकवि की रचना है। इसके एक-एक शब्द अनमोल हैं।

'श्रीभक्तमाल' के रचनाकार श्रीनाभादासजी के अनुसार रामानन्दी महात्मा श्रीनरहरिदासजी (श्रीअनन्तानन्दजी के शिष्य) ही गोस्वामीजी की गुरु-परम्परा में थे। श्रीनाभादासजी ने गोस्वामीजी को कलिकाल का वाल्मीकि कहा, तो एक अंग्रेज विद्वान् स्मिथ ने इन्हें मुगलकाल का सबसे महान् अध्यात्मिक व्यक्ति कहा, वहीं इतिहासकार जार्ज ग्रियर्सन ने इन्हें आध्यात्मिक एवं नैतिक विषयों का महान् रचनाकार बतलाया। आदरणीय मधुसूदन सरस्वती ने 'मानस' को देखकर बड़ी ही प्रसन्नता से अपनी सहमति और सम्मति के रूप में लिखा-

आनन्दकानने ह्यस्मिञ्जङ्गमस्तुलसीतरुः।
कवितामञ्जरी भाति रामभ्रमरभूषिता॥

अर्थात् 'इस काशीरूपी आनन्दवन में तुलसीदास चलता-फिरता हुआ तुलसी का पौधा है। उसकी कवितारूपी मञ्जरी बड़ी ही सुन्दर है, जिसपर श्रीरामरूपी भ्रमर सदा मँडराया करता है।'

मानस के निन्दक तब भी थे, आज भी हैं

तुलसीदासजी की लेखनी यदि केवल पंडितों के लिए चलती तो यह रचना लोकभाषा अवधी में न होकर देववाणी में ही होती। किन्तु भोलेनाथ का आदेश एवं इच्छा ही सर्वोपरि थी। इसलिए 'मानस' को भगवान् का आशीर्वादात्मक ग्रन्थ कहा गया है। हरि की इच्छा से अनेक पुराण, वेद और तन्त्रशास्त्र से सहमत तथा जो रामायण में वर्णित है और कुछ अन्यत्र से भी उपलब्ध श्रीरघुनाथजी की कथा को तुलसीदास अपने अन्तःकरण से सुख के लिये अत्यन्त मनोहर भाषा में रचना को विस्तृत करता है।

नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथा-
भाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति ॥[1]

इस उक्ति को गोस्वामीजी द्वारा प्रदत्त एक मौलिक प्रमाणपत्र कहा जा सकता है, जिस आधार पर उन्होंने इस मानस की रचना की। पुनः 'मानस की रचना कैसे हुई' और किन-किन परिस्थियों एवं स्तरों से होकर आज हमारे पास आयी है, उपर्युक्त तथ्यों में वर्णित है।

लौकिक/अलौकिक कथाएँ

तुलसीदासजी का गृहस्थवेश का परित्याग, तीर्थाटन, काकभुशुण्डि के दर्शन, चित्रकूट में रघुनाथजी के दर्शन, हनुमानजी के दर्शन, भरद्वाज एवं याज्ञवल्क्य मुनि के दर्शन, भगवान् शिव एवं माता पार्वती के दर्शन आदि के बाद इनमें कवित्वशक्ति का स्फुरण होना -जैसी अलौकिक एवं अद्भुत घटनाओं घटित होना; किसी आश्चर्य से कम नहीं। जब 'मानस' बनकर तैयार हो गयी, तब गोस्वामीजी ने मानस को काशी स्थित माता अन्नपूर्णा को सुनाया तथा रात्रि में इस पुस्तक को काशी में विश्वनाथ मन्दिर में रखवा दिया गया। प्रातः जब मन्दिर का पट खुला, तब वहाँ काशी के सभी विद्वान, भक्त, पण्डित, सन्यासी, महात्मा आदि वहाँ उपस्थित थे। सबने देखा रामचरितमानस के उपर 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' लिखी हुई थी, जिनपर भगवान् शिव की सही भी थी।

मानस की ख्याति देखकर कुछ लोगों के मन में ईर्ष्या भी होने लगी थी। कुछ लोग इसे नष्ट करना चाहते थे, तो कोई चुराना चाहते थे। इसी क्रम में चोरों की नजर (ये भी कोई विद्वान् ही रहे होंगे, क्योंकि चोर सामान्यतः 'मानस' जैसी पुस्तकों की चोरी नहीं किया करते) भी इस अनमोल ग्रन्थ पर थी। जब ये पुस्तक चुराने आये, तो जिस रास्ते से वे आते, उसी रास्ते पर

1. रामचरितमानस : बालकाण्ड, श्लोक संख्या 7.

दिव्यवर्णवाले एवं धनुष धारण किये हुए सर्वतोमुख पहरा देते हुए वीरों के दर्शन हो जाते थे। चोर यह देखकर अपने इस अधम-कार्य से विमुख होकर स्वयं भगवान् को ही भजने लगे। मानस की एक प्रति बनवाकर राजा टोडरमल के यहाँ रखवा दी। इसके बाद मानस की और प्रतियाँ बनने लगी थी। लेकिन लोग पुस्तक की और किसी अन्य तरीके परीक्षा लेना चाहते थे।

एकबार पुनः मानस की परीक्षा लेने के लिये बाबा विश्वनाथ के सामने ही मानस के ऊपर वेद, पुराण, शास्त्र आदि रख दिये गये और मन्दिर का पट बन्द कर दिया गया। दूसरे दिन प्रातःकाल जब मन्दिर का पट खोला गया, तब सभी ग्रन्थों के ऊपर 'श्रीरामचरितमानस' रखी हुई मिली। यह दृश्य कैसा रहा होगा, कल्पना की जा सकती है। कहा जाता है, एक तान्त्रिक ने तुलसीदासजी पर मारण का भी प्रयोग किया था, लेकिन यह प्रयोग उन्हीं के लिये घातक सिद्ध हुआ।

इसप्रकार, उस समय की सामाजिक व्यवस्था और साहित्यिक वैमनस्य के वर्णन देखने को मिलते हैं। आज की तरह ही उस समय भी कुछ धर्मविरोधी, आलोचक, समालोचक तत्त्व के लोग मौजूद थे। वे सभी मानस का आधार ढूँढ़ने का प्रयास करते रहते थे, गोस्वामीजी की लिखी रचना पर भरोसा न था और गोस्वामीजी की बातों पर। गोस्वामीजी ने तो कहा ही है -यह श्रीराम की निर्मल गुणोंवाली कथा में सभी प्रकार के सन्दहों को दूर करते हुए इस रचना में कोई दोष स्पर्श भी नहीं पाया है-

करत कथा जेहिं लाग न खोरी।[2]

अतः श्रीरामचरितमानस में कोई भी दोष नहीं, पढ़ने और समझनेवालों की बुद्धि शुद्ध होनी चाहिये।

'मानस' की रचना में अलौकिक समन्वय

श्रीरामचरितमानस कोई साधारण ग्रन्थ नहीं बल्कि अलौकिक है, जिसे भगवान् शंकर का आशीर्वादात्मक ग्रन्थ कहा गया है। 'मानस' की रचना के बारे में स्वयं गोस्वामीजी ने ही कुछ असाधारण संकेत भी दिये हैं, जिनकी ओर सर्वसाधारण का ध्यान कम ही जाता है। अनादिकाल से लेकर श्रीरामचरितमानस प्रकाशन तक श्रीरामकथा किसप्रकार जनमानस तक गोस्वामीजी के द्वारा पहुँची, इसका अद्भुत समन्वय इस प्रकरण में देखने को मिलता है।

(1) अनादिकाल में भगवान् शंकर ने इस मानस को रचकर रख छोड़ा था और सुअवसर पर इस मानसतत्त्व का उपदेश भगवान् ने माता पार्वती को दिया।

संभु कीन्ह यह चरित सुहावा।
बहुरि कृपा करि उमहि सुनावा॥[3]

रचि महेस निज मानस राखा।
पाइ सुसमय सिवा सन भाषा॥[4]

(2) श्रीरामचरितमानस भगवान् शंकर की प्रेरणा से काक-भुशुण्डि को लोमश ऋषि से प्राप्त हुआ-

रामचरित सर गुप्त सुहावा।
संभु प्रसाद तात मैं पावा॥[5]

पुनः काक-भुशुण्डि ने इसे मुनि याज्ञवल्क्य को कहा-

तेहि सन जागबलिक पुनि पावा।
तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा॥[6]

तथा याज्ञवल्क्य ने इसे भरद्वाज को दिया-

2 रामचरितमानस : 1.33.1
3 रामचरितमानस : 1.29.2
4 रामचरितमानस : 1.34.6
5 रामचरितमानस : 7.112.6
6 रामचरितमानस : 1.29.3

यागबलिक जो कथा सुनाई।
भरद्वाज मुनिबरहि सुनाई॥[7]
भारद्वाज सुनि संकर बानी।[8]

(3) स्वयं भगवान् शंकर ने नरहर्यानन्द को इस मानस को प्रदान कर इसका उपदेश तुलसीजी को देने को कहा।

बंदउ गुरु पद कंज कृपा सिंधु नररूप हरि।[9]

तथा

मैं पुनि निज गुर सन सुनी कथा सो सूकरखेत।[10]

यहाँ 'नररूप हरि' गुरु नरहर्यानन्द का संकेतक है, जिन गुरु-महाराज के चरण-कमल की वन्दना गोस्वामीजी ने की है। तदनुसार नरहर्यानन्द ने शूकरक्षेत्र में तुलसीजी को मानस-तत्त्व सुनाया।

(4) माघमेले में प्रयाग में तुलसीजी ने इसी तत्त्व को याज्ञवल्क्य को भारद्वाज से कहते हुए सुना। ये दोनों श्रोता और वक्ता समानशीलवाले और समदर्शी हैं और हरि-लीला के जानकार भी है।

श्रोता बकता ग्याननिधि कथा राम कै गूढ़।[11]

इसी के बाद गोस्वामीजी के हृदय में कवित्वशक्ति का स्फुरण हुआ और मानसतत्त्व को संस्कृत-बद्ध कर लिखना प्रारम्भ किया। लेकिन भगवान् के आदेशानुसार इस रचना को अयोध्या की भाषा में लिखने की प्रेरणा मिली और तुलसीदास मानस के कवि कहलाये। इन्होंने स्वयं ही कहा है-

संभु प्रसाद सुमति हियँ हुलसी।
रामचरितमानस कबि तुलसी॥[12]

(5) एकबार त्रेतायुग में शिवजी एवं माता भवानी अगस्त्यमुनि के पास गये थे, तब अगस्त्यमुनि ने उसी रामकथा को विस्तार से महेश्वर को सुनाया था-

एक बार त्रेता जुग माहीं।
संभु गए कुंभज रिषी पाहीं॥

एवं

रामकथा मुनिवर्ज बखानी।
सुनी महेस परम सुखु मानि॥[13]

इतने चरणों की समाप्ति के उपरान्त ही सप्रमाण मानस की कथा हम सभी कह-सुन पा रहे हैं। लेकिन यह कथा लिखी कब गयी, इसके सम्बन्ध में गोस्वामीजी की उक्ति है-

संबत सोरह सै एकतीसा।
करउँ कथा हरि पद धरि सीसा॥
नौमी भौम बार मधुमास।
अवधपुरीं यह चरित प्रकासा॥[14]

श्रीहरि के चरणों पर अपना मस्तक रखकर संवत् 1631 में इस कथा को प्रारम्भ किया गया। इस दिन चैत्रमास शुक्लपक्ष की नवमी तिथि, मंगलवार को अयोध्याजी में यह चरित्र प्रकाशित हुआ, इसी दिन श्रीराम का जन्म भी हुआ था और संवत्1633 में जब मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष था, इसी दिन दो वर्ष, सात महीने और छब्बीस दिन के परिश्रम के उपरान्त मानस की रचना पूर्ण हुई थी। यह वही महिना यानि पक्ष था, जब त्रेतायुग में श्रीरामजानकी का विवाह भी हुआ था,इसप्रकार इसकी रचना पूर्ण हुई।

शैव-वैष्णवों के बीच समन्वय

त्रिदेवों की मान्यता हमारे सनातनधर्मियों की विशेषता है, क्योंकि सृष्टि के सञ्चालन के लिये इन्हीं

7 रामचरितमानस : 1.29.1
8 रामचरितमानस : 1.140.4
9 रामचरितमानस : 1.5 दोहा
10 रामचरितमानस : 1.30क
11 रामचरितमानस : 1.30ख
12 रामचरितमानस : 1.35.1
13 रामचरितमानस : 1.47.1-2
14 रामचरितमानस : 1.33.2-3

त्रिदेवों ब्रह्मा, विष्णु और शिव को क्रमशः सृजक, पालक और संहारक कहा गया है। इन त्रिदेवों में मुख्यतः दो देव शिव और विष्णु को माननेवाले शैव और वैष्णव कहलाते हैं। शैवों के मुख्य देव शिव और वैष्णवों के मुख्य देव विष्णु को सर्वोपरि और सर्वशक्तिमान् के रूप में मान्यता है। तुलसीदासजी के समय इन दोनों ही शाखाओं में कलह होने के संकेत भी मिलते हैं। शैवों और वैष्णवों में यह कलह का होना अच्छी बात नहीं, क्योंकि सभी देव तत्त्वतः एक होते हुए भी सगुण-साकाररूप में भिन्न-भिन्न दृश्य होते हैं। गोस्वामीजी ने इस विवाद को सुलझाने के लिये बड़ी ही कुशलता से इसका समाधान मानस के द्वारा करते हुए कहा है-भगवान् शिव और विष्णु अर्थात् राम तो एक दूसरे के भक्त हैं, श्रीराम महादेव की पूजा करते हैं और शंकर श्रीराम को निरन्तर भजते रहते हैं; तो शैव और वैष्णवों में इसप्रकार की इर्ष्या एवं कलह क्यों! श्रीराम स्वयं कहते हैं-

सिव समान प्रिय मोहि न दूजा।
सिव द्रोही मम भगत कहावा।
सो नर सपनेहूँ मोहि न पावा॥
संकर बिमुख भगति चह मोरी।
सो नरकी मूढ़ मति थोरी॥[15]

संकरप्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ बास॥[16]

भगवान् शिव के समान मुझको दूसरा कोई भी प्रिय नहीं। जो शिव से द्रोह रखता है और मेरा भक्त कहलाता है, वह मनुष्य सपने में भी मुझे नहीं पाता। शंकर से विमुख होकर (विरोध करके) जो मेरी भक्ति चाहता है, वह नरकगामी, मूर्ख और अल्पबुद्धि है। पुनः कहते हैं-जिनको शंकर प्रिय हैं, परन्तु जो मेरे द्रोही हैं एवं जो भगवान् शिव के द्रोही हैं और मेरे दास बनना चाहते हैं, वे मनुष्य कल्पभर घोर नरक में निवास करते हैं।

संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि।[17]

भगवान् शंकर के भजन के बिना मनुष्य मेरी भक्ति नहीं पाता।

इधर भगवान् शिव का कहना है –

सोइ मम इष्टदेव रघुबीरा।
सेवत जाहि सदा मुनि धीरा॥[18]

मेरे इष्टदेव रघुवरजी ही हैं, जिनकी सेवा ज्ञानी मुनि सदा किया करते हैं। इतना ही नहीं, व्यावहारिक रूप में भी रामेश्वरम् में सेतु के निर्माण हो जाने के बाद श्रीराम ने स्वयं ही भगवान् शिव के प्रतिरूप शिवलिंग की स्थापना कर उनकी सविधान पूजन-अर्चन कर शिवभक्ति का उदाहरण स्थापित भी किया। क्योंकि श्रीराम की यह विशेषता भी है कि ये जो भी बोलते हैं, व्यवहाररूप में करते भी हैं। इसप्रकार गोस्वामीजी में शैव और वैष्णवों के बीच समन्वय स्थापित कर दोनों को साथ लाया।

निर्गुण-सगुण का समन्वय

निर्गुण-और सगुण का विवाद पंडितों, ज्ञानियों का विषय शुरू से ही रहा है। गोस्वामीजी ने इनके बीच सेतु का कार्य करते हुए कहा है-

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा।
अकथ अगाध अनादि अनूपा॥
मोरे मत बड़ नामु दुहू तें।
किए जेहिं जुग निज बस निज बूतें॥[19]

15 रामचरितमानस : 6.1.3-4
16 रामचरितमानस : 6.2
17 रामचरितमानस : 7.45
18 रामचरितमानस : 1.50.4
19 रामचरितमानस : 1.22.1

निर्गुण और सगुण- ब्रह्म के दो स्वरूप हैं। ये दोनों ही कथनीय, अथाह, अनादि और अनुपम हैं। मेरी सम्मति में नाम इन दोनों से बड़ा है। जिसने अपने बल से दोनों को अपने वश में कर रखा है। इसप्रकार नाम और ब्रह्म में राम दोनों से बड़ा है-

ब्रह्म राम तें नामु बड़ बर दायक बर दानि।[20]

इस कलिकाल में नाम ही कल्पवृक्ष है, जिसका स्मरण करते ही समस्त जंजालों से मुक्ति मिल जाती है। राम का नाम मनोवाञ्छित फल देनेवाला है, परलोक का परम हितैषी और इस लोक का माता-पिता कहा गया है। गोस्वामीजी पुनः कहते हैं-

जिन्ह कें अगुन न सगुन बिबेका।
जल्पहिं कल्पित बचन अनेका॥[21]

सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा।
गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा॥
अगुन अरूप अलख अज जोई।
भगत प्रेम बस सगुन सो होई॥
जो गुन रहित सगुन सोइ कैसें।
जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसें॥[22]

जिन्हें निर्गुण-सगुण का कुछ भी विवेक नहीं, वे अनेकों प्रकार से अनेक मनगढ़न्त बातें कहा करते हैं। सगुण और निर्गुण में कुछ भी भेद नहीं-मुनि, पुराण, पण्डित और वेद ऐसा ही कहते हैं। जो निर्गुण है वही सगुण भी है। दोनों के बीच समन्वय स्थापित करने के लिये गोस्वामीजी कहते हैं- जैसे जल और ओले में कुछ भी भेद नहीं; क्योंकि दोनों जल ही हैं, इसीप्रकार, निर्गुण और सगुण में तनिक भी भेद नहीं, दोनों एक ही हैं। निर्गुण से नाम का प्रभाव अत्यन्त बड़ा है और नाम (सगुण) राम से भी बड़ा है।

निरगुन तें एहि भाँति बड़ नाम प्रभाउ अपार।
कहउँ नामु बड़ राम तें निज बिचार अनुसार॥[23]

विविध ग्रन्थ और रामचरितमानस में समन्वय

गोस्वामीजी ने मानस के शुरुआत में ही यह कह दिया है कि विभिन्न ग्रन्थों तथा अन्यत्र से उपलब्ध रघुनाथजी की कथा को अपने अन्तःकरण के सुख के लिये अत्यन्त मनोहर भाषा में इसका विस्तार किया है।

नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथा
भाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति ॥ (1.7)।

(1) उदाहरण के रूप में- भगवत्स्तुति का एक श्लोक एवं मानस का सोरठा (1.2)।

मूकं करोति वाचालं पङ्गुं लङ्घयते गिरिं।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम्॥
मूक होइ बाचाल पंगु चढ़इ गिरिबर गहन।
जासु कृपाँ सो दयाल द्रवउ सकल कलि मल दहन॥

जिनकी कृपा से गूँगा वाचाल हो जाता है और लँगड़ा भी दुर्गम पहाड़ चढ़ जाता है। कलियुग के सभी पापों को जला डालनेवाले दयालु भगवान् मुझपर दया करें।

(2) महाकवि भवभूति कृत 'उत्तररामचरित' (2.7) एवं मानस का दोहा (7.19 ग।

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि को नु विज्ञातुमर्हति॥
कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि।
चित्त खगेस राम कर समुझी परइ कछु काहि॥

मानस के संवाद प्रसंग में काकभुशुण्डि ने गरुड़ को कहा है-

20 रामचरितमानस : 1.25
21 रामचरितमानस : 1.114.3
22 रामचरितमानस : 1.115.1-2
23 रामचरितमानस : 1.23

श्रीरामजी का चित्त वज्र से भी अत्यन्त कठोर और फूल से भी अत्यन्त कोमल है।

(3) श्रीमद्भागवत एवं मानस का दोहा

येऽन्येऽरविन्दाक्षविमुक्तमानिन-
स्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः ।
आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः
पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः ॥
तथा न ते माधव तावकाः क्वचिद्
भ्रश्यन्ति मार्गात् त्वयि बद्धसौहृदाः।
त्वयाभिगुप्ता विचरन्ति निर्भया
विनायकानीकपमूर्धसु प्रभो॥[24]

अर्थात् जो लोग आपके चरणकमलों की शरण नहीं लेते तथा आपके प्रति भक्तिभाव से रहित होने के कारण जिनकी बुद्धि भी शुद्ध नहीं रहती, वे बद्ध होने के बाद भी स्वयं को मुक्त होने का भ्रम पालते हैं। यदि वे तपस्या या साधना का कष्ट उठाकर किसी भी प्रकार से ऊँचे पद पर पहुँच भी जाते हैं, तब वे वहाँ से गिर जाते हैं। परन्तु भगवन्! जो आपके निज-जन हैं, जिन्होंने आपके चरणों में प्रीति जोड़ रखी है, वे कभी उन ज्ञानाभिमानियों की भाँति सपने साधन-मार्ग से गिरते नहीं। बड़े-बड़े विघ्न डालनेवालों के सिर पर वे पैर रखकर निर्भय विचरते हैं। कोई भी विघ्न उनके मार्ग में रुकावट नहीं डालते, क्योंकि उनके रक्षक आप जो हैं !' अब मानस में देखते हैं-

जे ग्यान मान बिमत्त तव भव हरनि भक्ति न आदरी।
ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरि॥
बिस्वास करि सब आस परिहरि दास तब जे होइ रहे।
जपि नाम तव बिनु श्रम तरहिं भाव नाथ सो समरामहे॥[25]

'जिन्होंने मिथ्याज्ञान के अभिमान के कारण मतवाले होकर जन्म-मृत्यु के भय को हरनेवाली आपकी भक्ति का आदर नहीं किया, हे हरि! उन्हें देवदुर्लभ पद को पाकर भी हम उस पद से नीचे गिरते देखते हैं। परन्तु जो सभी आशाओं को छोड़कर आप पर विश्वास करके आप के दास होकर रहते हैं, वे केवल आपका नाम ही जपकर बिना ही परिश्रम के भवसागर से तर जाते हैं। ऐसे आपका हम स्मरण करते हैं।'

उपर्युक्त उदाहरणों से यह स्वतः प्रमाणित होता है कि मानस में कुछ ऐसे भी प्रसंग हैं जो अन्यत्र भी देखे जा सकते हैं, इसलिये मन में यह भ्रम कदापि न रखें कि अन्यत्र का उद्धरण गोस्वामीजी ने मानस में हुबहू रखा है। इन्होंने मानस के शुरुआत में ही इसकी घोषणा कर दी थी-

नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।

ज्ञान और भक्ति का समन्वय

ज्ञान और भक्ति के बीच किसे श्रेष्ठ माना जाय, इसपर निरन्तर विवाद होता रहता है। ज्ञान की श्रेष्ठता के सम्बन्ध में गोस्वामीजी का कहना है-

कहहिं संत मुनि वेद पुराना।
नहिं कछु दुर्लभ ज्ञान समाना॥[26]

सन्त, मुनि, वेद और पुराण यह कहते हैं ज्ञान के समान दुर्लभ कुछ भी नहीं। लेकिन ज्ञान-मार्ग कृपाण की धार के समान है, इस मार्ग से गिरते देर नहीं लगती।

ग्यान पंथ कृपान कै धारा।[27]

परन्तु ज्ञान की श्रेष्ठता उसकी भक्ति सापेक्षता में ही निहित है।

भगतिहि ग्यानहि नहिं कछु भेदा।[28]

24 श्रीमद्भागवत : 10.2.32-33
25 रामचरितमानस : 7.12.छ०3
26 रामचरितमानस : 7.114.5
27 रामचरितमानस : 7.118.1
28 रामचरितमानस : 7.114.7

मनुष्य जब निर्मल ज्ञानरूपी जल में स्नान कर लेता है तब उसके हृदय में रामभक्ति का उदय होता है-

बिमल ग्यान जल जब सो नहाई।
तब रह राम भगति उर छाई॥[29]

फिर कहते हैं- भक्ति और ज्ञान में कुछ भी भेद नहीं। भक्ति को स्वतन्त्र कहा गया है, वह सभी सुखों की खान है। परन्तु सन्त के संग के बिना प्राणी इसे नहीं पा सकते।

भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी।
बिनु सत्संग न पावहिं प्रानी॥[30]

भक्ति करने में न तो योग की आवश्यकता है और न योग, यज्ञ, तप और उपवास की।

कहहु भगति पथ कवन प्रयासा।
जोग न मख जप तप उपवास॥[31]

जिसप्रकार मैल से मैल नहीं साफ नहीं हो सकता, जल के मथने पर घी नहीं निकल सकता; उसीप्रकार प्रेम-भक्तिरूपी निर्मल जल के बिना अंतःकरण का मल दूर नहीं होता।

छुटइ मल कि मलहि के धोएँ।
घृत कि पाँव कोइ बारि बिलोएँ॥
प्रेम भगति जल बिनु रघुराई।
अभिअंतर मल कबहुँ न जाई॥[32]

भक्ति से रहित सभी गुण फीके हैं, जैसे नमक के बिना बहुत प्रकार के भोजन के पदार्थ व्यर्थ होते है-

भक्ति हीन गुन सब सुख ऐसे।
लवन बिना बहु बिंजन जैसे॥[33]

जहाँ तक वेदों ने साधन बतलाये हैं, उन सबका फल श्रीहरि की भक्ति ही है। इसप्रकार ज्ञान और भक्ति के बीच विवाद का कोई कारण ही नहीं, दोनों ही संसार में उत्पन्न क्लेशों को हरनेवाले हैं-

उभय हरहिं भव संभव खेदा।[34]

साहित्यिक समन्वय

रामचरितमानस में साहित्यिक समन्वय की अद्भुत अभिव्यञ्जना देखने को मिलती है। व्रज और अवधी दोनों भाषाओं के अतिरिक्त, छन्द सामञ्जस्य, काव्य-शैलियाँ की मनोहारिता के साथ-साथ चौपाईयों के समन्वय का अद्भुत प्रबन्ध है। रामचरितमानस की शुरुआत ही संस्कृत श्लोकों **वर्णानामर्थसंघानां .... वाणीविनायकौ** से की गयी है। इसके साथ ही नमामीशमीशान..(रुद्राष्टक) जैसे संस्कृत श्लोकों की स्तुति को यथास्थान रखकर ग्रन्थ की गरिमा को गहराई प्रदान की गयी है। इसप्रकार, रामचरितमानस के अक्षर -अक्षर में साहित्यिक समन्वय की छाप देखी जा सकती है।

सामाजिक समन्वय

समाज के सभी वर्गों की भूमिका का महत्त्व सबों के लिये बराबर है। इसका उदाहरण मानस में देखा जा सकता है। श्रीराम जबश्रृंगवेरपुर (सिंगरौर) पहुँचते हैं, तब इन्होंने गंगापार जाने के लिये केवट (निषादराज गुह) से नाव माँगते हैं। वह नाव से पार करने को तैयार तो हो जाता है किन्तु उसे इसका डर था; कि मेरी काठ की नाव भी अगर स्त्रीरूप में हो जायेगी, तो मैं अपनी जीविका कैसे चलाऊँगा; क्योंकि आपने ही तो पत्थर की शिला को छुते ही सुन्दर स्त्री में परिवर्तित कर दिया था।

छुअत सीला भइ नारी सुहाई,
पाहन तें न काठ कठिनाई॥[35]

29. रामचरितमानस : 7.121.6
30. रामचरितमानस : 7.42.3
31. रामचरितमानस : 7.45.1
32. रामचरितमानस : 7.48.3
33. रामचरितमानस : 7.83.3
34. रामचरितमानस : 7.114.7
35. रामचरितमानस : 2.99.3.

अन्त में केवट ने श्रीराम के परिवार सहित चरण पखारकर एवं चरणोदक ग्रहणकर तब गंगा के पार पहुँचाया। केवट और श्रीराम की आत्मीयता का वर्णन विभोर करने वाली है। इतना ही नहीं एक प्रसंग में भरतजी गुह के कंधे पर हाथ रखते हुए चलते हैं-

सोहत दिएँ निषादहि लागू। [36]

और गुह को अत्यन्त प्रेम से गले भी लगते हैं-

भेंटत भरतु ताहि अति प्रीति।[37]

वसिष्ठजी ने निषादराज केवट को हृदय से लगा लिया[38], जबकि निषाद को लोक, वेदबाह्य और कुजाति भी कहा गया है-

कुमति, कुजाति लोक बेद बाहेर सब भाँती।[39]

सामाजिक समन्वय की विशेषता के बारे में कहा है-

मुखिआ मुखु सो चाहिऐ खान पान कहुँ एक।
पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित बिबेक॥[40]

तुलसीदासजी कहते हैं 'मुखिया को मुख के समान होना चाहिये, क्योंकि अकेला मुख जो कुछ भी खाता-पीता है, उससे विवेकपूर्ण सभी अंगों का पोषण होता है।' जब मातासीता का पता लगाते हुए श्रीराम और लक्ष्मण शबरी (शबर जाति की स्त्री) के आश्रम में पधारते हैं, तब शबरी ने बड़ी प्रसन्नता से फल-मूल आदि श्रीराम को समर्पित किया, प्रभु ने भी उसका प्रेमसहित भोग भी लगाया। जब की शबरी बोलती है-

अधम ते अधम अधम अतिनारी। [41]

भगवान् ने इन्हें नवधाभक्ति का उपदेश देकर दुर्लभ गति दी। जाति, वर्ण आदि की परवाह न करते हुए श्रीराम ने सम्पूर्ण समाज को अपना एक अंग समझते हुए सबको अंगीकार किया। इसप्रकार, सभी प्रकार की मर्यादाओं का पालन करने के ही कारण उन्हें मर्यादापुरुषोत्तम कहा गया।

छन्दसमन्वय

वर्ण और मात्रा का समन्वय मानस की विशेषता है। समूचे ग्रन्थ में भक्ति, ज्ञान, वैराग्य आदि से सम्बन्धित अलङ्कारिक दोहे और चौपाई पढ़नेवाले को कहीं कठिनाई नहीं देते, वरन यह सुगम, सरस और आनन्दानुभूति देनेवाले होते हैं। जैसे-

सखर सुकोमल मंजु दोष रहित दूषन सहित॥ [42]

अर्थात् जो खर (राक्षस) सहित होने पर भी खर (कठोर) से विपरीत बड़ी कोमल और सुन्दर है तथा जो दूषण (राक्षस) सहित होने पर भी दूषण अर्थात् दोष से रहित है। उसीप्रकार-

गिरा अर्थ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।[43]

जो वाणी और उसके अर्थ तथा जल और जल की लहर के समान कहने में अलग-अलग हैं; परन्तु वास्तव में अभिन्न (एक) हैं।

पुरइनि सघन चारु चौपाई।
जुगुति मंजु मनि सीप सुहाई॥[44]
छंद सोरठा सुंदर दोहा।
सोइ बहुरंग कमल कुल सोहा॥[45]

सुन्दर चौपाइयाँ ही इसमें घनी फैली हुई कमलिनी है, कविता की युक्तियाँ सुन्दर मोती उत्पन्न करने वाली सुहावनी सीपियाँ हैं। जो सुन्दर छन्द, सोरठे और दोहे हैं, वहीं इसमें बहुरंगे कमलों के समूह सुशोभित हैं। ऐसे अनेक प्रसंग मिलते हैं जिनमें गोस्वामीजी ने अपनी साहित्यिक प्रतिभा का अद्भुत प्रयोग देखने को मिलता

36. रामचरितमानस : 2.196.1.
37. रामचरितमानस : 2.193.1.
38. रामचरितमानस : 2.242.3.
39. रामचरितमानस : 2.195.1.
40. रामचरितमानस : 2.315.
41. रामचरितमानस : 3.34.2.
42. रामचरितमानस : 1.14घ.
43. रामचरितमानस : 1.18.
44. रामचरितमानस : 1.36.2.
45. रामचरितमानस : 1.36.3.

है। नवरसों से युक्त शब्द-योजना का दुर्लभ संयोग इनकी रचना में इन्द्रधनुषी छटा बिखेरती है।

रामचरितमानस के विविध प्रसंगों की इस संक्षिप्त रूपरेखा के वर्णन में हमसबों ने देखा की गोस्वामीजी ने किसप्रकार धर्म की स्थापना करने में स्वरचित मानस का आश्रय लेकर अपनी समन्वयवादी विचारधारा के द्वारा सारग्रहिणी प्रतिभा एवं काव्यात्मक चेतना को आरोपित किया। समन्वयवादी दृष्टिकोण की किसी भी कड़ी को टूटने से बचाने के लिये इन्होंने अथक परिश्रम भी किया है। इनके शास्त्रीय ज्ञान के आलोक में लौकिक ज्ञान भी कम मूल्यवान नहीं। रामचरितमानस के विभिन्न पहलुओं पर अन्तर्विरोध करना जायज नहीं, वरन ये कहीं न कहीं सन्दर्भों से जुड़े हुए हैं। रामचरितमानस की प्रासंगिकता किसी काल में कम नहीं होने वाली है-जनमानस ये अच्छी तरह जानते भी हैं। रामचरितमानस की विशेषता का विस्तार एवं प्रसार हिमालय से भी ऊँचा और सागर से भी गहरा है। इसके मौलिक आदर्शों की व्यापकता एवं वैशिष्ट्य किसी सीमा के बन्धन में नहीं, अपितु यह वैश्विक है। जीवन के हरेक क्षण में रामचरितमानस को आधार बनाकर जीवन को सार्थक किया जा सकता है। इसकी उदात्त कथाएँ भारत में ही नहीं बल्कि भारतेत्तर देशों यथा- तिब्बत, थाईलेण्ड, कम्बोडिया, फिजी, मलेशिया, गायना, बर्मा, इण्डोनेशिया, त्रिनिडाड, सूरीनाम, बालीद्वीप आदि में भी प्रचलित हैं।

अन्त में इतना ही कहा जा सकता है- श्रीराम की कथा चन्द्रमा के समान है, जिसे सन्त रूपी चकोर सदा पान करते रहते हैं।

रामकथा ससि किरन समाना।
संत चकोर करहिं जेहि पाना॥ [46]

***

46. रामचरितमानस : 1.46.3.

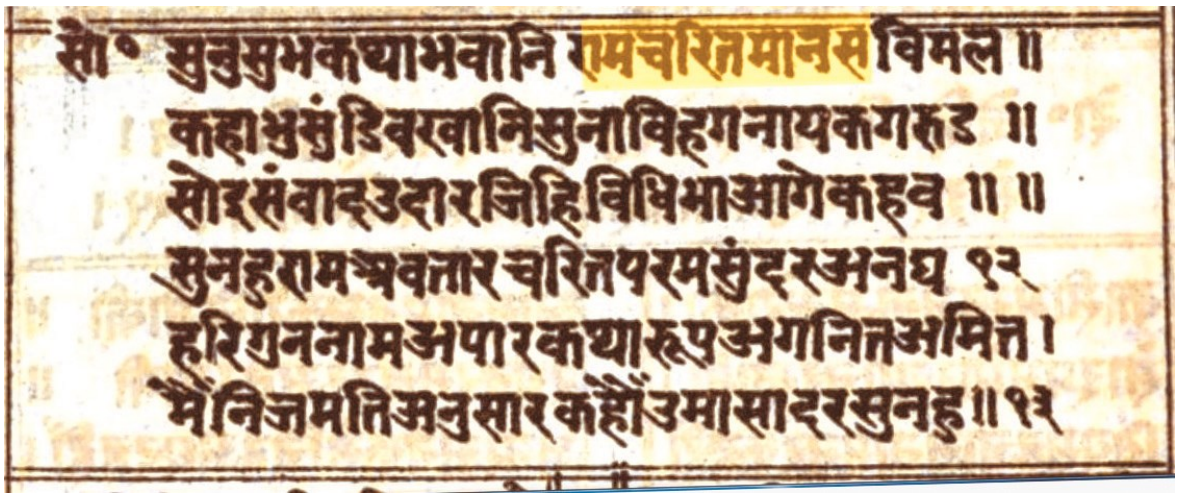

श्रीसंवत् 1932, तदनुसार 1875ई. में बनारस के 'सुधानेवास' छापेखाने से प्रकाशित रामचरितमानस की प्रति से

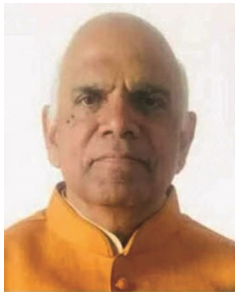

"पूजिअ बिप्र सील गुन हीना" : एक विमर्श

डॉ. राधानंद सिंह

'मिथकीय अवधारणा और तुलसी-साहित्य' (शोध ग्रंथ), 'रामचरितमानस विष्णुपदीभाष्य' सहित 10 ग्रन्थों के लेखक। संरक्षक, गया जिला हिंदी साहित्य सम्मेलन; संरक्षक, मारुति सत्संग मंडल, पुणे (महाराष्ट्र)। केंद्रीय विद्यालय संगठन की सेवा से अवकाश-प्राप्ति के पश्चात् पुणे में निवास।

लेखक, कवि, समीक्षक और संस्कृतिकर्मी; पुस्तकप्रेमी, समाजसेवी और साहित्यकर्मी; सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और राष्ट्रीय चेतना के सुधी व्याख्याता; रामचरितमानस, गीता और सनातन शास्त्रीय परम्परा के प्रवाचक और लेखक; चिंतक, विचारक और दार्शनिक-नैतिक भावों के उद्गाता।

पता : फ्लैट संख्या- 601, लिगैसी स्क्वायर, पुलिस लाइन रोड, वाकड, पुणे-411057 (महाराष्ट्र)

आज रामचरितमानस पर विवाद उठाये जा रहे हैं। यह 'मशीनी विवेचना' का प्रतिफल है। हम किसी ग्रन्थ की किसी एक पंक्ति या एक शब्द को लेकर उसकी विसंगति साबित नहीं कर सकते हैं। उँगली उठाने के लिए भी हमें पढ़ना पड़ेगा। कहा जाता है कि कुमारिल भट्ट बौद्धदर्शन का खण्डन करने के लिए छद्मवेष में भी बौद्ध बने थे। पर, आज जो लोग रामचरितमानस पर उँगली उठा रहे हैं, उन्हें पहले उन स्थलों पर लिखी गयी व्याख्याओं को पढना चाहिए। रामचरितमानस के पूर्ववर्ती टीकाकार उन सभी समस्याओं का समाधान कर चुके हैं, जिन्हें लेकर आज हंगामा खड़ा किया जा रहा है। एक ऐसे ही विख्यात प्रसंग पर पूर्ववर्ती व्याख्याकारों का अभिमत एवं सनातन धर्म की परम्परा के अनुकूल साम्प्रतिक विमर्श यहाँ प्रस्तुत है।

भूमिका

गोस्वामी तुलसीदासजी के श्रीरामचरितमानस में सनातन परम्परा का निर्वाह भी है और युगीन समस्याओं के समाधान के लिए व्यावहारिक चरित्र का विनियोग भी। श्रीरामचरितमानस में विप्र के असाधारण महत्त्व का वर्णन किया गया है, तो दूसरी ओर निषादराज, केवट, शबरी, कोल-भील, आदिवासी-वनवासी आदि के प्रेमपूर्ण प्रसंग भी हैं। स्पष्ट है वे सनातन परम्परा की वर्णव्यवस्था के पक्षधर हैं, परन्तु वे जातिवादी नहीं हैं। उन्होंने अपनी भारतीय वर्ण-व्यवस्था का ऐसा परिष्कार किया कि वसिष्ठादि विप्र पूजनीय हैं, तो दलित निषादराज, केवट और शबरी आदि भी अत्यन्त सम्माननीय हैं। तभी तो भरतजी निषादराज को देखकर रथ का परित्याग कर देते हैं। गोस्वामीजी कहते हैं-

राम सखा सुनि संदनु त्यागा।
चले उतरि उमगत अनुरागा॥[1]

और चित्रकूट में निषादराज से गुरु वसिष्ठ हृदय से मिलते हैं-

रामसखा रिषि बरबस भेंटा।
जनु महि लुठत स्नेह समेटा॥[2]

इस प्रकार गोस्वामीजी ने भारतीय स्वर्ण मंजूषा में सजे वर्णाश्रम-व्यवस्था का कायाकल्प कर दिया, जिसके मर्मस्थल में श्रीराम विराजमान थे।

श्रीरामचरितमानस के सम्बन्ध में यह तथ्य ध्यातव्य है कि 'मानस' को 'मानस' की दृष्टि से ही व्याख्यायित किया जाना चाहिए। तुलसी की कवितारूपिणी नदी का नाम सरयू है, जो सम्पूर्ण सुन्दर मंगलों की जड़ है। लोकमत और वेदमत इसके दो किनारे हैं। गोस्वामीजी की दृष्टि में इन दोनों मतों का अस्तित्व, औचित्य और अर्थवत्ता निरन्तर राम-तत्त्व की ओर प्रवाहित होने में और उसी में विसर्जित हो जाने में है। स्पष्ट है कि उनका 'मानस' वेदमत (ब्रह्म-चिन्तन) और लोकमत (व्यावहारिक आधार) दोनों की समरस चेतना का महाकाव्य है।

विद्वान् मानते हैं कि 'श्रीरामचरितमानस' लोकमत -प्रधान ग्रन्थ है। लोकनायक तुलसीदास के श्रीराम लोकमंगल के अधिष्ठाता हैं। वे लोकरक्षक और लोकरंजक दोनों हैं। लोकमर्यादा का जैसा अप्रतिम स्वरूप यहाँ चित्रित हुआ है,वह अन्यतम है। 'मानस' में लोक-संस्कृति, लोकनीति, लोकरीति और लोकप्रीति का प्राधान्य है। ऐसे लोकजीवन के महानायक श्रीराम के चरित रचते हुए उन्होंने लोकजीवन के अनुकूल अवधी भाषा को चुना। इसके परिणामस्वरूप उन्हें तत्कालीन आचार्यों का कोपभाजन बनना पड़ा। इसका समाधान तब हुआ, जब उस समय के महान् आचार्य मधुसूदन सरस्वती ने **आनन्दकानने**[3] इत्यादि श्लोक लिखकर तुलसीदास की प्रशंसा की। इन सभी बातों पर आगे विचार करेंगे। आइए, पहले प्रसंग को लेते हैं।

प्रसंग

गृध्रराज जटायु का उद्धार कर भगवान् श्रीराम लक्ष्मणजी के साथ सीताजी को खोजते हुए आगे चले। वे वन की सघनता को देखते चलते हैं। श्रीरामजी ने रास्ते में आते हुए कबंध राक्षस का उद्धार किया। उसने अपने शाप की सारी बातें कहीं। उसने कहा- दुर्वासा ने मुझे शाप दिया था। अब प्रभु के चरणों को देखने से वह पाप मिट गया-

दुरबासा मोहि दीन्ही सापा।
प्रभु पद पेखि मिटा सो पापा॥[4]

इसके नीचे सम्पूर्ण प्रसंग जानने-सुनने के बाद तुलसीदासजी ब्राह्मणों की प्रशंसा करते हुए कहते हैं-

सापत ताड़त परुष कहंता।
बिप्र पूज्य अस गावहिं संता॥
पूजिअ बिप्र सील गुन हीना।
सूद्र न गुन गन ग्यान प्रबीना॥[5]

सर्वप्रथम आचायों के अनुसार इसके अर्थ और व्याख्या को जानते-समझते हैं-

1. रामचरितमानस : 2.193.7
2. रामचरितमानस : 2.243.6
3. "आनन्दकानने ह्यस्मिन् जंगमस्तुलसीतरुः। कवितामञ्जरी भाति रामभ्रमरभूषिता।" पं. बलदेव उपाध्याय ने संस्कृत साहित्य का बृहद् इतिहास, खण्ड-10, पृ. 131 पर इसे 'काश्यां' से 'ह्यस्मिन्' को प्रतिस्थापित करते हुए उद्धृत किया है।
4. रामचरितमानस : 3.33.7
5. रामचरितमानस : 3.34.1-2

तुलसीपीठाधीश्वर स्वामी रामभद्राचार्यजी के अनुसार [6]

सन्त ऐसा गाते हैं कि शाप देता हुआ (नारदजी की भाँति), पिटाई करता हुआ (भृगुजी की भाँति), कठोर वचन कहता हुआ (परशुरामजी की भाँति) भी ब्राह्मण पूजनीय है। शील अर्थात् स्वभाव-गुण से हीन जन्मना ब्राह्मणत्व को प्राप्त करके (ब्राह्मण द्वारा गर्भाधान संस्कार क्रिया से उसकी सवर्ण पत्नी ब्राह्मणी से उत्पन्न हुए) पुनः गर्भाधान पुंसवन आदि पंद्रह संस्कारों से संपन्न और सोलहवें अंत्येष्टि संस्कार के लिए अधिकृत, ऐसे वेदपाठी ब्राह्मण की अवश्य पूजा करनी चाहिए। ब्राह्मणकुल में जन्म लेने पर भी उक्त सोलह संस्कारों से रहित और चिंता से असन्तुलित, आचरणहीन व्यक्ति की गुणगणों और ज्ञान में प्रवीण (कुशल) होने पर भी पूजा नहीं करनी चाहिए।

विशेष- छान्दोग्य उपनिषद् के रैक्व आख्यान से यह स्पष्ट है कि इन प्रकरणों में 'शूद्र' शब्द जातिवाचक न होकर आचरणवाचक है, त्रिकाल संध्यारहित ब्राह्मण भी शूद्र है। अतः स्पष्ट होता है कि शील, गुण से हीन होने पर भी विप्र अर्थात् सदाचारी ब्राह्मण की पूजा करनी चाहिए और गुणगणों और ज्ञान में कुशल होने पर भी शूद्र अर्थात् आचरणहीन किसी भी व्यक्ति की पूजा नहीं करनी चाहिए।

(उपर्युक्त व्याख्या यथार्थ और प्रासंगिक भी है।)

'मानसराजहंस' पंडित श्रीविजयानन्दजी त्रिपाठी के अनुसार [7]

जहाँ शास्त्रों में ब्राह्मण पूजन विधान है, वहाँ ब्राह्मणोचित गुणवाला शूद्र पूजित नहीं होगा। हीन-गुणवाला ब्राह्मण ही पूजित होता है। यथा : तुलसी पूजन-विधान में तुलसी के स्थान पर अनार, अंगूर का पूजन नहीं हो सकता।

(यहाँ ध्यातव्य है कि शब्द पूजिअ है, आदरणीय सम्माननीय नहीं। तुलसीदास तो सम्पूर्ण संसार को आदरणीय प्रणम्य मानते हैं- "सीय राममय सब जग जानी...।"[8])

स्वामी प्रज्ञानानन्द सरस्वती (मानस-गूढ़ार्थ-चन्द्रिका) [9]

स्वामीजी उपर्युक्त तथ्यों का समर्थन करते हुए कहते हैं कि जहाँ शास्त्र ने विप्रपूजा कही हो, वहाँ ब्राह्मण का ही पूजन करना चाहिए। चाहे वह अधम ही क्यों न हो। उसके स्थान पर विजितेन्द्रिय शूद्र नहीं चलेगा। गाय लात मारने वाली, मस्कही हो तो भी उसकी पूजा न करके सुशील, दुधारु गदही पूजा करने योग्य नहीं है। एक योग्य व्यक्ति इसे स्वीकार करेगा।

मानस पीयूष[10]

मानस-पीयूष में उपर्युक्त सभी तथ्यों का यथावत् वर्णन किया गया है। इसके अनुसार शास्त्र और सन्त निर्हेतुक उपदेशक होते हैं। अधिकारानुसार वे अधिकारियों को भिन्न-भिन्न उपदेश देते हैं। श्री

6 श्रीरामचरितमानस, भावबोधिनी हिंदी टीका - भाग : 2, पृ. 615

7 विजयानन्द त्रिपाठी : रामचरितमानस विजया टीका- श्रीनाथ मिश्र रामायणी एवं सहजानन्द त्रिपाठी (सम्पादक), इंडियन डेवलपमेंट ट्रस्ट कलकत्ता, वि.सं. 2011 (1955ई.) पृष्ठ 895.

8 रामचरितमानस : 1.8.2

9 मानस-गूढ़ार्थ-चन्द्रिका : अरण्यकांड-पृष्ठ : 180

10 रामचरितमानस : मानस पीयूष व्याख्या, भाग 5, गीताप्रेस, अरण्यकांड, पृ. 344-46

तुकाराम जी, श्री सावंता माली, श्री गोरा कुम्हार इत्यादि सन्त तो ब्राह्मणेतर वर्ण के होते हुए भी ब्राह्मण की पूज्यता का उपदेश देते हैं। इसमें विस्तारपूर्वक इस प्रसंग का वर्णन किया गया है।

पंडित रामकिंकरजी महाराज

पंडितजी ने 'मानस-मुक्तावली' सहित अनेक ग्रन्थों में ऐसे विषय पर विस्तारपूर्वक बड़ी तटस्थता से विचार किया है। वे कहते हैं कि 'मानस' में शंबूक-वध की साभिप्राय अनुपस्थिति यह सिद्ध करती है कि तुलसीदास कट्टर नहीं थे। कट्टरता का समर्थन करनेवाला कवि इस कठोर घटना की उपेक्षा क्यों करता? क्या निषाद और श्रीराम की मैत्री वर्णव्यवस्था के अनुकूल है? निषाद और भरत तथा निषाद और वसिष्ठ के प्रेम का वर्णन ऊपर किया गया है।अगर गोस्वामीजी कट्टर होते तो तुलसीदास 'रामहिं केवल प्रेम पिआरा'[11] के स्थान पर 'रामहिं केवल जाति पिआरी' का सिद्धांत प्रचारित करते।

कबंध को ब्राह्मण भक्ति और शूद्र-विरोधी उपदेश देकर श्रीराम शबरी के आश्रम में जाते हैं। शबरी दो अयोग्यताओं से युक्त थी- शूद्र और नारी, प्रभु उसे माँ के समान सम्मान देते हैं- 'सो जननि ज्यों आदरी सानुज, राम भूखे भायकै।'[12] शबरी के द्वारा यह कहे जाने पर कि वह तो निम्न जाति की नारी है, प्रभु कह उठते हैं, 'प्रकाशमयी शबरी! मैं तो एकमात्र भक्ति का नाता मानता हूँ। मेरी दृष्टि में जाति, पाँति, कुल आदि का कोई महत्त्व नहीं है। भक्ति के अभाव में सारी योग्यताएँ उसी प्रकार व्यर्थ हैं जैसे जलहीन बादल-

कह रघुपति सुनु भामिनी बाता।
मानउँ एक भगति कर नाता॥
जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई।
धन बल परिजन गुन चतुराई॥
भगति हीन नर सोहइ कैसा।
बिनु जल बारिद देखिअ जैसा॥[13]

भगवान् श्रीराम अन्यत्र भी स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि किसी भी जाति, लिंग अथवा वर्ग का क्यों न हो, जो सारे कपट छोड़कर भजन करता है, वे मुझे अतीव प्रिय है-

पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ।
सर्व भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ॥

मेरी दृष्टि तो यह है कि उपर्युक्त विवादास्पद चौपाई तो पराशर संहिता के श्लोक का अनुवाद है-

दुःशीलोऽपि द्विजः पूज्यो न शूद्रो विजितेन्द्रियः।
दुष्टां गां तु परित्यज्य कोऽर्चेत् क्षीरवतीं खरीम्॥[14]

'नाना-पुराण-निगमागम-सम्मतं' के व्रतधारी तुलसीदास के एक चरण परम्परा में हैं तो दूसरे चरण वर्तमान की भावभूमि पर अवस्थित हैं, और उनकी दृष्टि भविष्य को निहार रही है। यह मानस का पारंपरिक सिद्धांत पक्ष है। तुलसीदास मध्यकाल की भावभूमि पर अवस्थित हैं और व्यावहारिक धरातल पर उनके श्रीराम वन में चलते हुए गृद्ध जटायु को गले लगाते हैं, भिलनी शबरी के जूठे बेर खाते हैं और आदिवासी-वनवासी, कोल-भील, वानर-भालुओं को सखा बनाते हैं।

11. रामचरितमानस : अयोध्याकाण्ड, 134.1
12 तुलसीदास : गीतावली, अरण्यकाण्ड, 4.
13. रामचरितमानस : 3.35.4-6.
14. पराशर संहिता : पराशरमाधव, माधवाचार्यकृत व्याख्या सहित, (प्रायश्चित्तकाण्ड), 8.25, एसियाटिक सोसायटी कलकत्ता, 1892ई., पृ. 175- यह प्रसंग प्रायश्चित्त प्रकरण में है, जहाँ इसके ठीक ऊपर के श्लोक में कहा गया है कि गायत्री आदि नित्य आचार से रहित विप्र शूद्र से भी अपवित्र है। वह प्रायश्चित्त का भागी है। इस सन्दर्भ में गायत्री, ब्राह्मणोचित आचार से युक्त विप्र की यहाँ प्रशंसा करते हुए वस्तुतः गायत्री आदि की प्रशंसा की गयी है, न कि विप्र की।- सम्पादक

पंडितजी आगे कहते हैं कि शबरी की शूद्रता के होते हुए भी वे उसे सम्मान देते हैं और रावण के ब्राह्मण होते हुए भी उसका वध करने में किसी प्रकार का संकोच नहीं करते। (इस दृष्टि से एकबार लक्ष्मण-परशुराम संवाद को भी दृष्टिगत करना चाहिए) सच तो यह है कि तुलसीदास के राम अत्यन्त उदार हैं। वे ब्राह्मणों का सम्मान करते हैं, पर शूद्रों का ही नहीं पशुओं को (वानर, भालू) को भी आदर देते हैं।

सिर-विहीन शरीर को कबंध कहते हैं। वर्ण-व्यवस्था में ब्राह्मण सिर का प्रतीक माना जाता है। कबन्ध के ब्राह्मण-विद्वेष का यही वैज्ञानिक कारण है। कबंध ने इस भयंकर शरीर पाने की कथा भगवान् से कही कि वह दुर्वासा के शापवश कबंध हो गया। मानस -पीयूष के अनुसार "किसी पुराण में कथा है कि दुर्वासा ऋषि के भयंकर स्वरूप को देखकर वह अपने रूपसौंदर्य के अभिमान से उनपर हँसा था। कोई कहता है कि इन्द्र की सभा में नाच-गान कर रहा था, दुर्वासाजी को देखकर हँसा, उससे ताल में चूक गया, तब मुनि ने शाप दिया।और कोई कहते हैं कि दुर्वासा इसके गान पर प्रसन्न नहीं हुए, तब यह उन्हें अनभिज्ञ कहकर हँसा, इसपर मुनि ने शाप दिया कि राक्षस हो जा।"

ऐसा भी कहा जाता है कि कबंध पूर्व जन्म में गन्धर्व था। वह गायन-कला में निपुण था।किन्तु इन्द्र की सभा उसकी तुलना में दुर्वासा ऋषि को अधिक सम्मान दिया जाता था। उसे इन्द्र की सभा में खड़ा रहना पड़ता था। दूसरी ओर दुर्वासा के आने पर इन्द्र स्वयं उनके सम्मान में खड़े हो जाते थे। इसी में वह कभी दुर्वासा की अवहेलना के कारण शापित हो गया। यही हेतु है कि यहाँ भी वह दुर्वासा के साथ कोई सम्मानसूचक शब्द नहीं जोड़ता। कहता है— **"दुरबासा मोहि दिन्ही सापा।"**

विप्र के प्रति ऐसे अनादर से उसके शूद्रवत् व्यवहार ने भगवान् श्रीराम को दुःखित कर दिया। तत्पश्चात् भगवान् श्रीराम ने यह बात कही। पंडितजी कहते हैं कि प्रभु ने उपदेश के माध्यम से कबंध को जो फटकार दी उसमें **"पूजिअ बिप्र सील गुन हीना।"** के प्रतीक दुर्वासा थे और **"सूद्र न गुन गन ग्यान प्रवीना।"** स्वयं कबंध था। उसे अपनी गायन कला पर गर्व था। प्रभु उसके विद्वेष और अहंकार को विनष्ट करने के लिए ही अतिरेक भर प्रहार करते हुए यह वाक्य कहते हैं, "तू अपनी विद्वेष-भरी प्रवृत्ति के कारण गुणयुक्त होता हुआ भी मुझे प्रिय नहीं हो सकता। दुर्वासा शील-गुणहीन होने पर भी तपस्वी ब्राह्मण के नाते सम्मान्य है" व्यक्ति विशेष के सन्दर्भ में कहे गए वाक्य को सार्वकालिक सत्य मानने से ही इस प्रकार की भ्रान्ति उत्पन्न हो गई या की गई कि तुलसी और उनके राम शूद्र-विरोधी हैं।[15]

गोस्वामीजी ने यहाँ ऋषियों के शाप और उसके अनुग्रह का बहुत ही बढ़िया चित्रण किया है। मानस में अहल्या-प्रसंग हो या कबन्धादि कोई प्रसंग ऋषि-मुनियों के शाप के साथ उनका अनुग्रह भी स्पष्ट दिखता है। इसीलिए अहल्या कहती हैं-

मुनि श्राप जो दीन्हा अति भल कीन्हा
परम अनुग्रह मैं माना।[16]

यहाँ भी कुछ ऐसा ही प्रसंग है। मुनि ने अनुग्रहपूर्वक कहा कि रामदर्शन से उसका शाप शमित हो जाएगा। उसके पाप का प्रायश्चित् रामचरणदर्शन से हुआ। प्रभु श्रीराम के चरणदर्शन से सकल चराचर का कल्याण होता है। आज इस कबंध का भी रामचरणदर्शन से शाप का शमन हो गया और पाप मिट गया-

15 मानस-मुक्तावली पृष्ठ : 102-106 16 रामचरितमानस : 1.211.छंद।

"प्रभु पद देखि मिटा सो पापा॥"

यहाँ एक बात प्रमुखता से ध्यातव्य है कि कबन्ध प्रभु के उपदेश और चरणदर्शन से परितृप्त होकर गया और उसके पाप-ताप-सन्ताप का शमन हो गया। उसकी भ्रान्ति दूर हो गई। किसी प्रसंग को पूर्णरूपेण ग्रहण करना चाहिए। जब इस प्रसंग का कबंध कहता है कि-

प्रभु पद पेखि मिटा सब पापा।

और

रघुपति चरन कमल सिरु नाई।
गयउ गगन आपनि गति पाई॥[17]

अर्थात् उसके सारे दुःख मिट गए। जब इस प्रसंग के ऑरिजनल कबंध को प्रभु के इस कथन से सुख और सन्तोष की प्राप्ति हुई, तो यह समझ में नहीं आता कि आज का यह डुप्लीकेट कबंध इस प्रसंग को समग्रतः जाने और समझे बिना एक चौपाई को आधार बनाकर क्यों हाय-तौबा मचा रहा है? सच यह है कि गोस्वामी तुलसीदास ने मानस की रचना परमार्थ और सर्वार्थ कल्याण के लिए निःस्वार्थ भाव से किया है और ये आजका मस्तिष्क विहीन कबंध स्वार्थ की सड़ाँध में जी रहा है।

कुछ अन्य मनोरंजक व्याख्याएँ

कुछ विद्वानों ने इसके मनोरंजक अर्थ भी किए हैं, जो अधोलिखित हैं-

(क) गोस्वामी तुलसीदास शील के परम अनुयायी हैं। भगवान् परशुराम में बल-वीर्य एवं रूप तीनों ही थे; किंतु शील न होने के कारण तुलसीदास के बहुत प्रिय नहीं हो सके। एतदर्थ इस चौपाई का अर्थ यह किया जाना चाहिए कि- शीलवान् विप्र (पूजिअ बिप्र सील) अन्य गुणों से हीन होकर भी पूजनीय है। क्योंकि वह विप्रत्व की अन्य विशेषताओं से परिपूर्ण है और जन्मना श्रेष्ठ है॥ परन्तु सदा शूद्रवत् आचरण करनेवाला व्यक्ति शील, गुणादि से युक्त भी हो तो समादरणीय नहीं है, क्योंकि वह जन्मना और कर्मणा दोनों से हीन है। यही तो लोक और समाज का भी युग -युगीन सच है।

(ख) सन्तों ने ऐसा माना है कि दुर्वासा रुद्रांश हैं। वे अहर्निश ब्रह्ममय रहते हैं। इस साधनारत जीवन में अवरोध होने से उनमें जागतिक क्रोध दृष्टिगत होता है। गुणातीत ऐसे महापुरुष में बाह्य दृष्टि से कोई विशेष आचरण भी नहीं दिखाई देता है और न तो कोई विशेष गुण ही दिखता है। तो क्या इन्हें शूद्र मान लिया जाए, नहीं। शूद्र न, ये शूद्र नहीं हैं। ये ज्ञान में निपुण हैं, इनकी वाणी ही वेद है और ब्रह्म में स्थित होने के कारण ये सर्वरूपेण प्रवीण हैं। हृदय में ब्रह्म की प्रत्यक्षानुभूति ही ज्ञान है। ये शूद्र जैसे दिखाई भर पड़ते हैं। सच तो यह है कि यै वैदिक और लौकिक सभी दृष्टियों से पूजनीय हैं।

जब हम तुलसीदास के व्यक्तित्व और कर्तृत्व पर जागतिक दृष्टि से विचार करते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि युगद्रष्टा महाकवि को अपने जीवन मे भी इस संघर्ष से जूझना पड़ा था। इनकी 'कवितावली' इनके युग और जीवन का जीवंत गाथा है। वहाँ बहुत स्पष्टता से वे बहुत कुछ कहते हैं, जो मर्यादावादी तुलसी 'मानस' में नहीं कह पाते हैं। जाति के आक्षेप से संबद्ध अनेक छन्द इसमें हैं। विस्तरभयात् एक दो पर विचार करते हैं। तुलसी तत्कालीन विरोधियों को उत्तर देते हुए कहते हैं-

धूत कहौ, अवधूत कहौ,
रजपूतु कहौ, जोलहा कहौ कोऊ।
काहू की बेटी सों बेटा न ब्याहब,
काहू की जाति बिहार न सोऊ॥[18]

17 रामचरितमानस : 3.34.3

18 तुलसीदास : कवितावली, उत्तरकाण्ड, 106.

स्पष्ट है संन्यासी के लिए धूत-अवधूत, रघुकुल के श्रीराम को नायक बनाने के कारण-राजपूत तथा संस्कृत को छोड़कर कबीर की तरह लोकभाषा (अवधी) में मानस रचने के कारण उन्हें विरोधियों ने जुलाहा तक कहा था।

'विनय-पत्रिका' में तुलसीदासजी कहते हैं कि लोग मुझे नीच कहते हैं; परन्तु मुझे इसके लिए कुछ भी चिंता या संकोच नहीं है, क्योंकि न तो मुझे किसी के साथ विवाह-सगाई करनी है और न मुझे जाति-पाँति से ही मतलब है।-

लोग कहैं पोच, सो न सोच न सँकोच मेरे,
ब्याह न बरेखी, जाति-पाँति न चहत हौं॥[19]

स्पष्ट है कि मध्यकालीन तुलसीदास युगीन प्रहार को झेलते हुए लोकजीवन के उद्धार के लिए सतत संघर्षशील रहे और जिस युग ने उन्हें अपमान, अनादर, ईर्ष्या की सौगात दी, उस युगजीवन को मानस-पीयूष का पान कराकर उसके सर्वविध कल्याण के लिए अमृत संजीवनी प्रदान की। मानस की वह गंगाधारा अद्यावधि प्रवहमान है और दृष्टिवंत उसमें अवगाहन कर कृतार्थ हो रहे हैं।

सबसे बड़ी बात यह है कि श्रीरामचरितमानस विश्वासरूपी शिव के मुख से कही गई है और श्रद्धारूपी पार्वती के कान से सुनी गई है। यह श्रद्धा-विश्वास का गौरवग्रन्थ है। यही कारण है कि बालकांड में श्रद्धारूपी पार्वती की स्तुति (जय जय गिरिवर राज किशोरी) है और उत्तरकांड में विश्वासरूपी शिव की स्तुति 'नमामीशमीशाननिर्वाणरूपं इत्यादि है। इन्हीं श्रद्धा और विश्वास के दो तटों से सम्पूर्ण मानस सातों काण्ड प्रवहमान हैं।

इस प्रसंग में इसका तात्पर्य यह है कि इस चौपाई की अर्धाली "पूजिअ बिप्र..." वेदमत से संबद्ध है; यानि श्रद्धापूर्ण है। अगर जीवन में अपनी वैदिक सनातन परम्परा के प्रति श्रद्धा हो तो "पूजिअ बिप्र सील गुन हीना।" में कोई दोष नहीं दिखेगा। और दूसरी अर्धाली लोकमत से संबद्ध है। अर्थात् लोक में विश्वास ही प्रधान है। अगर पारस्परिक लोक विश्वास खंडित होने लगता है तब "शूद्र न गुन गन ग्यान प्रवीना" का भाव समाज में गुंजित होने लगता है। याद रखिए अन्धविश्वास से बचना चाहिए, परन्तु अन्ध-अविश्वास से बचना भी उतना ही आवश्यक है। तुलसीदास ने मानस में ऐसे ही अन्धविश्वासी पाखंडियों पर गहरा प्रहार किया है।

अन्ततः एक मनोरंजक व्यंग्यात्मक कथन से आलेख को विश्राम देना चाहता हूँ। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है-

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गविहस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥[20]

भावार्थ यह है कि ज्ञानीजन विद्या और विनययुक्त ब्राह्मण में तथा गौ, हाथी, कुत्ते और चांडाल में भी समदर्शी होते हैं। परन्तु जागतिक दृष्टि से हम इन सभी के साथ एक जैसा व्यवहार नहीं कर सकते। यद्यपि इनमें से कोई घृणाजनक नहीं है। ठीक ऐसा ही हमारे सभी सामाजिक सम्बन्ध हैं। उसपर विवेकपूर्ण व्यवहार ही यथेष्ट है। सच तो यह है कि यहाँ विप्र-शूद्र का प्रश्न नहीं है-

प्रश्न है मानव मानव में भेद बुद्धि बढ़ती जाती है।
हैं मनुज सोचते एक ओर श्रद्धा विभेद से पछताती है॥

एतदर्थ, हमें भी आज पूर्ण व्यावहारिक सात्त्विक दृष्टि से अपनी आर्ष परम्परा का मूल्यांकन करना होगा। याद रखिए-

रैदास, व्यास, मीराबाई, रसखान, रहीम, निराला सब।
भारत के हैं ये दिव्यरत्न, इनसे भीतर से प्यार करो॥
हैं राम हमारे जन-जन के कण-कण में युग से जमे हुए।
जन-मन के प्राण बने तुलसी, प्राणों पर मत प्रहार करो॥

***

19 तुलसीदास : विनय-पत्रिका : पद 76 20 गीता : 5.18

“सकल ताड़ना के अधिकारी” : एक विमर्श

- डॉ. जितेन्द्रकुमार सिंह ‘संजय’
मुख्य न्यासी
श्रीरघुनाथ-मन्दिर देवगढ़ तीर्थक्षेत्र न्यास
देवगढ़, शिवद्वार – 231 210, सोनभद्र (उ.प्र.)

रामचरितमानस के सुन्दरकाण्ड का सर्वाधिक विवादित स्थल जिसमें तथाकथित रूप से शूद्र तथा नारी का नाम लेकर ताड़न का अधिकारी कहा गया है, विमर्श के लिए दो दिशाओं में शोध की अपेक्षा रखता है। एक तो इसका मूल पाठ क्या है? शूद्र-क्षुद्र-छुद्र, ताड़न-ताड़ना क्या है? हमें इस स्थल पर पाठभेद मिलता है तो निश्चित रूप से प्रामाणिक पाठ का निर्धारण होना चाहिए। फिर ताड़न का अर्थ क्या है? क्या इसका अर्थ केवल पीटना है? तो फिर ताड़ना-भाँप लेना- अनुमान करना भी तो लोकप्रयुक्त अर्थ है? हो सकता है मूल शब्द ‘तारन’ रहा हो। समान उच्चारण के कारण ‘र’ ‘ड़’ में बदल गया! ‘तारन’ था तो फिर हमें “बूड़तै गज ग्राह तार्यौ, कियौ बाहिर नीर। दासि मीरा लाल गिरधर, दुख जहाँ तहाँ पीर।” का भी अर्थ देखना होगा। यह समुद्र की उक्ति है, वह आत्मसमर्पण कर रहा है, विनती कर रहा है, अपने किए पर पछता रहा है। अतः हमें सारी परिस्थितियों के आधार पर विमर्श करना होगा। एक विमर्श यहाँ भी संकलित है।

विगत कुछ दिनों से परमपूज्य गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज कृत ‘श्रीरामचरितमानस’ के सुन्दरकाण्ड की चौपाई ‘ढोल गँवार सुद्र पसु नारी’ को लेकर विवाद उठा हुआ है। वस्तुतः यह चौपाई सुन्दरकाण्ड के अन्तर्गत श्रीराम-समुद्र-संवाद में समुद्रदेव के द्वारा कही गयी है। इस चौपाई का वास्तविक अर्थ और सन्दर्भ वह नहीं है, जो आजकल बताया जा रहा है।

मूल पाठ की खोज

सर्वप्रथम इस चौपाई के मूल पाठ को जानना चाहिए। श्रीरामचरितमानस का सर्वप्रथम मुद्रण फोर्ट विलियम कॉलेज कलकत्ता के प्राध्यापक पण्डित सदल मिश्र (1767-1847 ई.) ने सन् 1810 ई. में करवाया था। उस संस्करण में इस चौपाई का मूलपाठ निम्नांकित है –

ढोल गँवार क्षुद्र पसु नारी।
ये सब ताड़न के अधिकारी॥

यहाँ ‘शुद्र’ शब्द नहीं है। पण्डित सदल मिश्र डुमराँव राज्य के निवासी थे। उन्होंने श्रीरामचरितमानस की जिन पाण्डुलिपियों के आधार पर 1810 ई. में श्रीरामचरितमानस को प्रकाशित किया था, वह काशी से भोजपुर के बीच की पाण्डुलिपियाँ हैं। यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक है कि श्रीरामचरितमानस के साथ साथ सम्पूर्ण तुलसी-वाङ्मय के सन्दर्भ में जब कभी भी, पाठालोचन तथा पाठ-निर्धारण की समस्या

आयेगी, तब डुमराँव के राजा नारायणमल्ल मल्ल के द्वारा तुलसी-वाङ्मय से चयनित सूक्ति-संग्रह को देखना अनिवार्य होगा। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के मित्र और 'क्षत्रिय' पत्रिका के सम्पादक महाराजकुमार बाबू रामदीन सिंह ने अपनी पुस्तक 'बिहारदर्पण', जिसका द्वितीय संस्करण 1883 ई. में खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पटना से प्रकाशित हुआ है, में राजा नारायणमल्ल का विस्तारपूर्वक जीवन-परिचय दिया है। 'बिहारदर्पण' में बाबू रामदीन सिंह लिखते हैं —

'राजा नारायणमल्ल ने श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदास कृत 'मानस रामायण' और उनके कई एक ग्रन्थों से नीति, दृष्टान्त, भक्ति, सामयिक वार्ता का संग्रह किया था, जो यथार्थ में उन्नति का मूल है उसको यहाँ पाठकों के आनन्दार्थ में लिख देता हूँ।[1]

राजा नारायण मल्ल द्वारा संकलित प्रति

बाबू रामदीन सिंह ने 'बिहारदर्पण' की रचना करते समय राजा नारायणमल्ल के द्वारा संकलित तुलसी-वाङ्मय को देखा था, जो आज भी डुमराँव राज्य के सरस्वती पुस्तकालय में सुरक्षित है। बाबू रामदीन सिंह ने अपनी पुस्तक में राजा नारायणमल्ल के द्वारा संकलित तुलसी-वाङ्मय के जिन दोहों और चौपाइयों को उद्धृत किया है, उसमें प्रस्तुत चौपाई भी है, जो पृष्ठ 64 पर नीचे से आठवीं पंक्ति में है। राजा नारायणमल्ल का जन्म 1587 ई. में हुआ था। वे 20 वर्ष की आयु में 1607 ई. में सिंहासनारूढ़ हुए और 1621 ई. में इनकी मृत्यु हुई। गोस्वामी तुलसीदासजी का जन्म 1497 ई. में हुआ था और मृत्यु 1623 ई. में हुई थी। कहने का तात्पर्य यह है कि राजा नारायणमल्ल गोस्वामीजी के सामने ही पैदा हुए और उनके सामने ही दिवंगत भी हुए। इसलिए उन्होंने तुलसी-वाङ्मय से नीतिपरक उक्तियों के संकलन के लिए जिन पाण्डुलिपियों का उपयोग किया होगा, वह पाण्डुलियाँ सर्वथा निर्दोष रही होंगी। उस समय तक उनमें मिलावट नहीं हुआ रहा होगा। बाद में मिलावट भी हुआ और क्षेपक भी जोड़े गये।

श्रीरामचरितमानस की प्रारम्भिक पाण्डुलिपियों में 'शुद्र' शब्द नहीं है। अठारहवीं शताब्दी के प्रथम दशक तक पूर्वांचल में बेटी के विवाह के समय श्रीरामचरितमानस की पाण्डुलिपि लाल रंग के वस्त्र में बाँधकर बेटी को देने की परम्परा रही है। उस समय की बहुत-सी पाण्डुलिपियाँ इस समय भी उपलब्ध हैं। उन सबमें शुद्र के स्थान पर छुद्र अथवा क्षुद्र पाठ ही मिलता है। श्रीरामचरितमानस की एक प्राचीन पाण्डुलिपि जम्मू-कश्मीर के श्रीरघुनाथ-मन्दिर लाइब्रेरी में रखी हुई है। उस पाण्डुलिपि में 'ढोल गँवार क्षुद्र पसु नारी' पाठ है। निश्चित रूप से 'शुद्र' पाठ 1857 की क्रान्ति के पूर्व की प्रतियों में नहीं मिलता है। यह षडयन्त्र 1857 की क्रान्ति के पश्चात् अंग्रेज़ों ने भारतीय समाज को तोड़ने के उद्देश्य से किया है। इस सन्दर्भ में हम सभी को सतर्कतापूर्वक अन्वेषण करने की आवश्यकता है। आज श्रीरामचरितमानस के अनेक संस्करण उपलब्ध हैं। फिर भी हमें पण्डित सदल मिश्र द्वारा सम्पादित श्रीरामचरितमानस के 1810 ई. के संस्करण और बाबू रणबहादुर सिंह कृत श्रीरामचरितमानस की 'नानापुराण-निगमागमसम्मता' टीका को पुनः प्रकाशित करना चाहिए। इससे समाज में श्रीरामचरितमानस को लेकर फैली भ्रान्तियों का सर्वदा के लिए निवारण हो जायेगा।

गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज ने प्रारम्भ में ही स्पष्ट किया कि उन्होंने श्रीरामचरितमानस में अपने मन से कुछ भी जोड़कर नहीं लिखा है। जो कुछ भी लिखा है वह विभिन्न पुराण, वेद, आगम, अन्य रामायण तथा ग्रन्थों से समर्थित विषयवस्तु के आधार पर ही लिखा है —

1 बाबू रामदीन सिंह : बिहारदर्पण, संस्करण 1883 ई., पृ. 22

नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्-
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथगाथा
भाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति ॥[2]

यदि गोस्वामी तुलसीदासजी ने जो कुछ भी लिखा है, वह शास्त्रसम्मत है, आधारभूत है, तब गोस्वामीजी के ऊपर प्रश्नचिह्न लगाने के पूर्व प्रस्तुत चौपाई, जिसे श्रीरामजी के समक्ष समुद्र ने कहा और गोस्वामीजी ने वर्णित किया है, सर्वप्रथम उसके आधार को ही देखना उचित होगा।

सनातन धर्म में आचार की बड़ी प्रधानता है। महाभारतकार भगवान् वेदव्यास ने **'आचारप्रभवो धर्मः'** कहा है। धर्म का उद्भव ही आचार से है। इसी क्रम में यह भी कहा गया है— **'आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः।'** आचारहीन व्यक्ति को वेद भी पवित्र नहीं करते। शुभाशुभ कर्म तथा उनके परलोक में भोगोपभोग के विषय में जानने हेतु सनातन धर्म में गरुडपुराण की बड़ी महत्ता है। प्रस्तुत चौपाई का आधार गरुडपुराण के आचारकाण्ड में प्राप्त होता है —

दुर्जनाः शिल्पिनो दासा दुष्टाश्च पटहाः स्त्रियः।
ताडिता मार्दवं यान्ति न ते सत्कारभाजनम्॥[3]

उपर्युक्त श्लोक में स्पष्ट कहा गया है- जो शिल्पी (कारीगर), दास दुर्जन हैं, ढोल आदि वाद्ययन्त्र हैं और दुष्टा स्त्रियाँ हैं, ये ताड़ना से मृदुता को प्राप्त करते हैं, अतः ये सत्कार के अधिकारी नहीं हैं। यह इसका सामान्य शब्दार्थ है। ये लोग ताड़ना के अधिकारी क्यों हैं? यह विवेचना का विषय है।

'ताड़न' शब्द का अर्थ

अभी जिस 'ताड़न' शब्द को बार-बार रेखांकित करके समाज में वैमनस्य का बीज बोया जा रहा है, उस 'ताड़न' शब्द पर यहाँ विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है। यह 'ताड़न' शब्द जिस चौपाई में प्रयुक्त हुआ है, वह गोस्वामी तुलसीदास का सूक्तिवाक्य है। अर्थात् जड़ चेतन स्वामी, सेवक, बहन, बेटी, मित्र, पत्नी, पति सभी को 'ताड़ते रहना' चाहिए। 'ताड़ना' अवधी भाषा का प्रचलिततम शब्द है, जिसे अंग्रेज़ी में 'Watch' शब्द से व्यक्त किया जाता है। अवधी भाषी इस प्रकार वाक्य प्रयोग करते मिल जायेंगे — *'बहुत में ल्हाइक बोलत रहेनि तबइ ताड़ि गये कि रुपिया माँगइ बरे आइ हएँ।'* अवधीभाषी क्षेत्र से रीवा, बाँदा, वाराणसी, जौनपुर, गाजीपुर आदि क्षेत्रों की बघेली, भोजपुरी, बुन्देली आदि विभाषाएँ जुड़ी हैं। बघेली में बोलेगे — *'दादू अपना पंचन त देखेनि तबइ ताड़ि लिहिनि।'* भोजपुरी में कहेंगे — *'बबुआ अमनि देखलिं तबइ ताड़ि गइलीं।'* इसी तरह बुन्देली में — *'ताड़ लयो हतो'* प्रयोग होता है।

संस्कृत में आकस्मिक रूप से कुछ घटित होने को 'काकतालीयन्याय' कहा जाता है। जैसे ताड़ के पत्ते और फल आँधी में भी नहीं गिरते, उसके पत्ते इतने शक्तिशाली होते हैं कि उसमें रस्सी बाँधकर ताड़ी दुहनेवाले ऊपर चढ़ जाते हैं, किन्तु उसके फल जब पक जाते हैं और पत्ता पूरी तरह सूख जाता है तब अचानक गिर जाता है। अतः उसके नीचे से निकलने पर ताड़ना पड़ता है। यह अनुरणनात्मक शब्द हैं। संस्कृत में तडि- आघाते धातु है, अतः संस्कृत में 'ताडयति' का एक अर्थ आघात पहुँचाना होता है। लोकभाषा में इसका अर्थ आभास कर लेना, जान लेना, समझ जाना है। संस्कृत में 'ड़' प्रयोग नहीं होता उसमें ताडन होता है अर्थात् 'ड' का प्रयोग किया जाता है।

'चाणक्यनीति' में कहा गया है —

2 श्रीरामचरितमानस 1.7 3 गरुडपुराण 1.109.31

लालने बहवो दोषा ताडने बहवो गुणाः।
तस्मात् पुत्रं च शिष्यं च ताडयेन्न तु लालयेत्॥
श्रुतिस्मृत्युक्तमाचारं कुर्यान्मर्माणि न स्पृशेत्।
न निन्दा ताडने कुर्यात्सुतं शिष्यं च ताडयेत्॥[4]

'ताडन' की बहुत अधिक उपयोगिता है। 'बृहद्विष्णुस्मृति' में ताडन का उद्देश्य और विधि स्पष्ट की गयी है –

शास्यं शासनार्थं ताडयेत्। तं वेणुदलेन रज्ज्वा वा पृष्ठे।[5]

अर्थात्, जो शासन करने योग्य हैं (आपके अधीनस्थ लोग), उनपर शासन करने हेतु उनकी ताडना करे। (कैसे करे?) पीठ पर बाँस की छड़ी अथवा रस्सी से ताडित करे।

अब प्रश्न उठता है कि क्या जब 'ताड़न' का अर्थ मारना भी है, और गरुड-पुराण के श्लोक एवं श्रीरामचरितमानस की चौपाई में छुद्र तथा स्त्री का वर्णन भी है, तो क्या उन्हें मारते-पीटते रहना चाहिए? तो उत्तर है, बिल्कुल नहीं। यह विधि केवल दुर्जन छुद्र एवं दुष्टा स्त्री हेतु है, निर्दोष हेतु नहीं। पद्मपुराण में स्पष्ट वर्णित है –

निर्दोषं ताडयेत् पश्चान्मोहात् पापेन केनचित्।
स पापी पापमाप्नोति निर्दोषस्य शरीरजम्॥[6]

जो व्यक्ति किसी मोह या पापबुद्धि के कारण किसी निर्दोष को ताडित करता (मारता-पीटता) है, वह पापी उस निर्दोष के शरीर में जितने पाप हैं, उन्हें ग्रहण कर लेता है। किसी को पीड़ा न पहुँचाये। हाँ, अपने पुत्र और शिष्य को मार सकते हैं –

न कुर्यात्कस्यचित्पीडां सुतं शिष्यं तु ताडयेत्।[7]

लेकिन पुत्र और शिष्य को भी अकारण ही नहीं मारना चाहिए, अपितु उनका अपराध होने पर उचित मार्ग की शिक्षा देने हेतु ही ऐसा करना चाहिए। महाभारत के अनुशासनपर्व में कहा गया है– **'अन्यत्र पुत्राच्छिष्याच्च शिक्षार्थं ताडनं स्मृतम्।'**[8] इसी तरह भविष्य-पुराण के उत्तरपर्व में कहा गया है कि शिक्षा देने के अतिरिक्त प्रसंग में शिष्य और पुत्र को नहीं मारना चाहिए –

नान्यत्र पुत्रशिष्याभ्यां शिक्षया ताडनं स्मृतम्।[9]

यदि शिल्पी, दास (छुद्र) निर्दोष हो तो उसे कदापि नहीं मारना चाहिए, किन्तु यदि दोषी हो तो? उस समय कहा गया है-

कर्मारम्भं तु यः कृत्वा सिद्धं नैव तु कारयेत्।
बलात्कारयितव्योऽसौ अकुर्वन्दण्डमर्हति॥[10]

जो कारीगर एक बार कार्य प्रारम्भ करके उसे बिना पूरा किए छोड़ देता है, उससे वह कार्य बलपूर्वक पूरा करवाना चाहिए, न करने पर उसे दण्डित करना चाहिए।

आज भी आप देखते होंगे, बहुत से कारीगर, ठेकेदार आदि निजी या सरकारी कार्यों में खूब आलस्य एवं प्रमाद करके अपने नियोक्ता का काम बिगाड़ देते हैं। ऐसी स्थिति हेतु ही दण्ड की बात आयी है। वह दण्ड कैसा हो? इसका वर्णन भी वहीं किया गया है –

ताडनं बन्धनञ्चैव तथैव च विडम्बनम्।
एष दण्डो हि दासस्य नार्थदण्डो विधीयते॥[11]

उसे ताडित करे (मारे), कैद में डाल दे, उसे व्याकुल कर दे। दासों का यही सब दण्ड बताया गया है, उसके लिए आर्थिक दण्ड नहीं है, क्योंकि वे धनाढ्य नहीं होते। छुद्र अथवा दास के अतिरिक्त अन्य जन

4 चाणक्यनीति 2.12
5 बृहद्विष्णुस्मृति, अध्याय- 71, सूत्र - 81-82
6 पद्मपुराण, भूमिखण्ड 33.12
7 पद्मपुराण, स्वर्गखण्ड, अध्याय 55
8 महाभारत : अनुशासनपर्व,161. 36 उत्तरार्द्ध
9 भविष्य पुराण : उत्तर पर्व, 205.52.
10 बृहत्कात्यायनस्मृति, श्लोक – 657
11 बृहत्कात्यायनस्मृति, श्लोक – 963

वही पाप करें तो दास से दुगुना वैश्य, उससे दुगुना क्षत्रिय और उससे दुगुना ब्राह्मण को दण्ड मिलता है –

येन दोषेण शूद्रस्य दण्डो भवति धर्मतः।
तेन चेत्क्षत्रविप्राणां द्विगुणो द्विगुणो भवेत्॥[12]

निर्दोष के प्रति द्वेषपूर्वक ताडन करना, उसे बन्धन में डालना, उसके प्रति अपशब्दों का प्रयोग करना, दुराचार कहलाता है। वह सज्जनों का मार्ग नहीं है। श्री भरतमुनि ने उपदिष्ट किया है –

ताडनं बन्धनं चापि यो विमृश्य समाचरेत्।
तथा परुषवाक्यश्च दुराचारः स तन्यते॥[13]

दुराचार करने से आयु की हानि होती है, व्यक्ति नरक जाता है। स्त्रियों के अनियन्त्रित होने से दुराचार बढ़ता है, वर्णसंकरता फैलती है। महाभारत के अनुशासनपर्व में कहते हैं –

ये नास्तिका निष्क्रियाश्च गुरुशास्त्रातिलङ्घिनः।
अधर्मज्ञा दुराचारास्ते भवन्ति गतायुषः॥
विशीला भिन्नमर्यादा नित्यं सङ्कीर्णमैथुनाः।
अल्पायुषो भवन्तीह नरा निरयगामिनः॥[14]

जो लोग ईश्वर के अस्तित्व को नहीं मानते, स्वकर्म का परित्याग करते हैं, अपने गुरु एवं शास्त्रों की अवहेलना करते हैं, अधर्म का समर्थन करनेवाले दुराचारी हैं, उनकी आयु नष्ट होती है। जो शीलरहित हैं, मर्यादा को खण्डित करनेवाले हैं, नित्य (अविधिपूर्वक) भोग करनेवाले हैं, वे लोग आयुहीन होकर नरक में जाते हैं।

शास्त्र कहते हैं कि भय दिखाना चाहिए, डाटना चाहिए, किन्तु मर्म का स्पर्श नहीं करना चाहिए। मर्मस्थल विशेष रूप से पाँच ज्ञानेंद्रियाँ हैं– कर्ण, त्वचा, आँख, जिह्वा और नासिका। ध्यातव्य है कि त्वगिन्द्रिय पूरे शरीर में व्याप्त है। अतः बिना स्पर्श किये ताड़ना चाहिए, इसका अर्थ यह हुआ कि बिना स्पर्श किये डाटना चाहिए। श्रीरामचरितमानस में 'बिन भय होइ न प्रीति, डाटेहि पै नव नीच' इन्हीं वाक्यों का प्रयोग गोस्वामी तुलसीदास करते हैं। श्रीरामजी भी कहते हैं –

बोले राम सकोप तब, बिन भय होय न प्रीति।
लछिमन बान सरासन आनू,
सोखहू वारिधि बिसिख कृसानू॥

यहाँ केवल भय दिखाया गया है। समुद्र को मारा नहीं गया है। भयभीत होकर समुद्र श्रीराम के समक्ष उपस्थित होता है और प्रभु श्रीराम के श्रीरचरणों को पकड़ कर कहता है –

सभय सिन्धु गहि पद प्रभु केरे।
छमहु नाथ सब अवगुन मेरे॥
गगन समीर अनल जलधरनी।
इन्ह कइ नाथ सहज जड़करनी॥
तब प्रेरित माया उपजाए।
सृष्टि हेतु सब ग्रन्थनि गाए॥
प्रभु आयसु जेहिं कह जस अहई।
सो तेहि भाँति रे सुख लहई॥
प्रभु भल कीन्हि मोहि सिख दीन्ही।
मरजादा प्रभु तुम्हारी कीन्ही॥
ढोल गँवार छुद्र पसु नारी।
सकल ताड़ना के अधिकारी॥
तब प्रेरित माया उपजाए।
सृष्टि हेतु सब ग्रन्थनि गाए॥

समुद्र भगवान् श्रीराम के सामने विनम्र होकर आये। उन्हें पहचान लिया अतः ज्ञानवान् भी हो गया। तब वेदान्त शास्त्र की पंक्ति का भाव प्रस्तुत करने लगा –**'विक्षेपशक्तिमद् अज्ञानानोपहितचैतन्या-दाकाशः आकाशाद्वायुर्वायोरग्निरग्नेरापोऽद्भ्यः पृथ्वी।'**

12 बृहत्कात्यायनस्मृति, श्लोक – 485
13 नाट्यशास्त्र, अध्याय 22
14 महाभारत : अनुशासनपर्व, 161, 11-12.

महाभूत	1. गगन	2. समीर	3. अनल	4. जल,	5. धरणी
उपमान	1. ढोल	2. गँवार	3. क्षुद्र/छुद्र	4. पसु	5. नारी
तन्मात्राएँ	1. शब्द	2. स्पर्श	3. रूप	4. रस	5. गन्ध

तालिका सं. 01

ठीक सृष्टि का जो क्रम वेदान्त शास्त्र में है वैसा ही कह रहा है। महाभूतों का क्रम भी वही है– **'गगन समीर अनल जल धरनी।'**

समुद्र श्रीराम से कहता है– 'प्रभु प्रताप मैं जब सुखाई।' यदि जल तत्त्व आप नष्ट कर देंगे, तब सारी सृष्टि समाप्त हो जायेगी; क्योंकि **'छिति जल पावक गगन समीरा, पंच रचित यह अधम सरीरा।'** आपके पास नल-नील हैं, जिनके स्पर्श से पर्वत जल में तैरने लगेंगे; क्योंकि बचपन में ऋषियों ने उन्हें ऐसा आशीर्वाद दिया है। आप सेतु बनाकर चले जायँ, उसमें मैं भी सहयोग करूँगा।

समुद्र के उक्त कथन की विस्तृत जानकारी के लिए श्रीरामचरितमानस के गहन अध्ययन और पाठालोचन की आवश्यकता है। वस्तुतः 'गगन समीर' आदि पंच महाभूतों के उपमान के रूप में तुलसीदासजी ने ढोल-गँवार आदि को प्रस्तुत किया है। (तालिका संख्या 01)

इन सभी को ताड़ना (Watch) करना पड़ता है।

ढोल :

अब यहाँ जो ताड़न शब्द आया है, वह भोजपुरी, अवधी, बघेली, बुन्देली आदि ग्राम्यभाषा में 'देखने' के अर्थ में तो प्रयुक्त होता ही है, किन्तु इस चौपाई में प्रयुक्त 'ताड़न' शब्द में श्लेष अलंकार भी सन्निहित है, जिसके सन्दर्भ के अनुसार अनेक अर्थ निकलते हैं। यदि ढोल (पटह) को मात्र आँखों से देखा जाय, तो क्या ढोल से स्वर-सिद्धि हो सकेगी? क्या देखने मात्र से ढोल बज सकेगा? बिलकुल नहीं। यहाँ ताड़न का तात्पर्य थाप से है। यदि आप ढोल को बिना ताड़े, उसकी रस्सियों को बिना ताने, अनियन्त्रित रूप से पीटेंगे, तो ढोल से स्वर-सिद्धि नहीं होगी। अनियन्त्रित रूप से पीटने पर ढोल नष्ट हो जायेगा। इसलिए यहाँ ताड़न का तात्पर्य मृदुतापूर्वक दिये गये थाप से ही है, जिसका मथितार्थ देखना ही होगा। ढोल की डोरी हो, या उसकी आवाज़ हो या मनुष्य का शब्दोच्चारण सभी में सावधानी, अन्दाज करना आवश्यक है। पहले तो ढोल की डोरी को ताड़ना (तानना) पड़ता है तभी आवाज़ सही निकलेगी। गानेवाले का स्वर ढोल या तबले की आवाज़ से दब ने जाय यह भी ताड़ते रहना पड़ता है। कई बार गायक हाथ से इशारा भी करता रहता है, जिससे ढोलक बजानेवाला सावधान रहता है। 'ताड़न' का अनुमान लगाना तथा ताडन करना दोनों ही अर्थ शब्द तन्मात्रा और ढोल में अन्वित है। और भाषा के शब्दोच्चारण में भी **'आत्मा बुद्ध्या समेत्यार्थान् मनो युङ्क्ते विवक्षया। मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम्, मारुतस्तूरसि चरन् मन्द्रं जनयति स्वरम्।'** ढोल या तबला पर भी हाथ मारना पड़ता है। मन कायाग्नि को आहत करता निकलता है। तभी शब्द निकलता है।

गँवार :

लोक में गँवार कम समझदार को कहा जाता है। गँवार को शब्दकोशात्मक अर्थ गाँव में रहनेवाला होता है। साहित्य में बहुधा नगर में रहनेवाले को नागरिक और गाँव में रहनेवाले को गँवार कहा गया है। गँवार शब्द में हीनता का बोध नहीं है। जिस तरह नगर में रहनेवाले

नागरिक को 'नागर' अर्थात् चतुर कहा जाता है, उसी तरह गाँव में रहनेवाले गँवार को सहज और सरल कहा गया है। उसका छल-छद्म से कोई लेना-देना नहीं होता है। यहाँ जब हम गाँव और गँवार की व्याख्या कर रहे हैं, तब हमें गोस्वामी तुलसीदासजी के समय से लेकर आज़ादी के पूर्ववाले गाँव और गाँव के निवासियों को ही चर्चा के केन्द्र में रखना चाहिए। आज गाँव गाँव में शिक्षा का व्यापक प्रचार-प्रसार हो गया है। अब ग्रामीण पृष्ठभूमिवाले लोग भी प्रत्येक क्षेत्र में मानक उपमान गढ़ रहे हैं।

वस्तुतः गोस्वामी तुलसीदासजी की उपर्युक्त चौपाई में प्रयुक्त 'गँवार' शब्द का तात्पर्य सीधा, सच्चा और सरल ही है। उसे आप मूर्ख नहीं कह सकते। मूर्ख होना और सहज-सरल होना पृथक् पृथक् है। मूर्ख को ताड़ने से कोई लाभ नहीं है, जो सहज-सरल है, उसे ताड़ते रहना चाहिए। उसके प्रति सतर्क रहना चाहिए।

होशंगाबाद के रामजी बाबा की समाधिवाले मेले में बालनाट्य-प्रतियोगिता में एक गँवार पात्र 'बोधई' रहता है। साहब ने ऑफिस में नास्ता मँगाया, तो खुली प्लेट में लेकर आ गया। साहब ने कहा तस्तरी को ढँककर ले आना चाहिए। दूसरे दिन ऑफिस जाने के लिए तैयार होते समय जूता मँगाया तो तस्तरी में ढँककर ले आया। दूसरे दृश्य में साहब ने बोधई से कहा जाओ बँगले पर जाकर मैडम से कहना कुछ मेरे साथी आये हैं। इनके साथ घर आऊँगा। अतः चाय-नाश्ते का प्रबन्ध रखेंगी। थोड़ी देर में आकर बोधई ने कहा मैडम कह रहीं है कि चाय पत्ती शक्कर दूध नहीं है। मिठाई भी नहीं है। जाकर साहब के बता दो, बोधई दौड़ते हुए आये। सबके सामने साहब को उक्त सन्देश दे दिया। साहब ऑफिस से बाहर निकलकर रुपए दिये और कहा – 'सबके सामने ऐसी बात नहीं बतानी चाहिए।' अगले दृश्य में साहब के घर में आग लग गयी। मैडम ने भेजा और कहा – 'बोधई! जाकर साहब को बता दो कि आग लग गयी है।' बोधई ने देखा कि उनके कक्ष में कुछ लोग बैठे थे तो वे बाहर ही रुके रहे, जब सब चले गये, साहब अकेले बचे तब बताया। गाड़ी में हवा भराते समय स्वयं भी मीटर की सूई देख लेना पड़ता है, नहीं तो दुकान के लड़के ज़्यादा हवा भर देंगे, तो टायर फट जायेगा। कम भरने पर कट लग जायगा। ठण्ड में ठण्डी हवा से बचने के लिए खिड़की बन्द करनी पड़ेगी। आँधी को ताड़ने पर पेड़ से दूर खड़ा होना पड़ेगा। अतः हवा के लिए गँवार उपमान रखा गया है।

क्षुद्र/छुद्र :

अग्नि की तन्मात्रा रूप है और इन्द्रिय आँख को कहा गया है। छुद्र अर्थात् छोटी बुद्धिवाले श्रमिक को को ताड़ना पड़ता है, नहीं तो काम नहीं करेंगे बैठे रहेंगे। सीमेंट-रेत का सन्तुलन बिगाड़ देंगे। धान काटते समय पटककर रखेंगे, जिससे धान के दाने खेत में गिर जायेंगे। गैस चूल्हे पर दूध रखने पर थोड़ी देर बाद उसकी लौ कम करनी पड़ेगी। सीटी देने पर प्रेशर कूकर हटाना पड़ेगा और गैस बन्द करनी पड़ेगी। ज्वलनशील पदार्थ रेल बस में ले जाने पर प्रतिबन्ध लगना पड़ेगा। महाभूत सभी जड़ात्मक है। उनका उपयोग सावधानी से करना पड़ता है, ताड़ना पड़ता है, ताकना पड़ता है। अतः अग्नि का उपमान क्षुद्र/छुद्र (श्रमिक) को रखा गया है। रूप देखकर किसी को हर समझदार ताड़ लेता है।

पशु

यह जल का उपमान है। जल की तन्मत्रा रस (स्वाद) है। इसकी इन्द्रिय जिह्वा है, पशु जिह्वा की दृष्टि से लालची होता है। गाय खेत चर जाएगी। कुत्ता भोजनालय में घुस जायेगा। गेट खुला होने पर पशु बगीचा चर लेंगे। जंगल में जाने पर शेर आदि हिंसक पशुओं से बचना पड़ेगा। मधुमेह के मरीज़ को मिठाई नहीं खानी पड़ेगी, तेल मसाले, छोड़ने पड़ेगे। रूप और

सौन्दर्य का लोभी रावण सीता का हरण करने के कारण अपना सर्वनाश कर बैठा। शूर्पणखा के रूप से प्रभावित लक्ष्मण नहीं होते हैं और ताड़ लेते है यह दुष्ट है। यद्यपि रूप तन्मात्रा अग्नि की है। आखिर अग्नि से ही तो जल उत्पन्न है। सृष्टि में सभी महाभूतों के 1/8 अंश एक दूसरे में मिश्रित रहते हैं। इसलिए जल का उपमान पशु को दिया गया। पशुओं में माता और बहन का विभेद कामरस में नहीं होता। इसलिए योगिराज भर्तृहरि कहते हैं – 'धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः।'

नारी :

स्त्री का उपमान पृथ्वी है। पृथ्वी की तन्मात्रा गन्ध है। इसकी इन्द्रिय नासिका है। जीने के लिए श्वास आवश्यक है। चाहे गन्दी नाली की दुर्गन्ध ही सहनी पड़े। अतः नारी और भौतिक सम्पत्ति की ओर सभी आकृष्ट होते हैं। दूर कहीं प्लाट लेकर छोड़ दिया है और बहुत दिन तक नहीं देखा तो कोई क़ब्ज़ा कर सकता है। बहन, बेटी को नहीं ताड़ा तो वह कभी भी कुमार्गगामिनी हो सकती है – **'जिमि स्वतन्त्र होइ बिगरहि नारी।'** गरुडपुराण के उपर्युक्त श्लोक का भाव ही समुद्र के मुख से निःसृत हुआ है, जिसे गोस्वामीजी ने लिपिबद्ध किया है। अब प्रश्न यह उठता है कि स्त्रियों को ताड़ित करने की बात क्यों कही गयी है? इस प्रश्न का उत्तर भी गरुडपुराण के इसी अध्याय के श्लोक 38-39 नदी और नारी की तुलना करते हुए दिया गया है –

नद्यश्च नार्यश्च समस्वभावाः
स्वतन्त्रभावे गमनादिके च।
तोयैश्च दोषैश्च निपातयन्ति
नद्यो हि कूलानि कुलानि नार्यः॥
नदी पातयते कूलं नारी पातयते कुलम्।
नारीणाञ्च नदीनाञ्च स्वच्छन्दा ललिता गतिः॥[15]

यदि बिल्कुल स्वतन्त्र (बिना नियन्त्रण के) छोड़ दिया जाये, यदि ताड़ा न जाय, देखा न जाय, तो गमन के सन्दर्भ में नदी और नारी का स्वभाव एक ही होता है। अनियन्त्रित स्वभाववाली नदी अपने जल से किनारों को डुबो देती है तो अनियन्त्रित स्त्री अपने दोषों से कुल को डुबो देती है।

ध्यातव्य है कि स्त्री का नियन्त्रण करने का अर्थ उसे बाँधकर रखना नहीं है। माता, पिता, गुरुजन अपने आचरणों से आदर्श प्रस्तुत करते हुए अपनी कन्या को श्रेष्ठ संस्कार दें, वही उसके लिए मर्यादा और नियन्त्रण का कार्य करता है।

वस्तुतः एवं तत्त्वतः किसी भी धर्मग्रन्थ के किसी पात्र विशेष के द्वारा कही गयी उक्तियों का सन्दर्भगत अर्थ न ग्रहण करके मनमानी व्याख्या करना और समाज को दिग्भ्रमित करना एक अक्षम्य अपराध है। समाज का नेतृत्व करनेवाले राजनयिक को इस प्रकार के घृणास्पद कर्म से दूर रहना चाहिए।

***

15 गरुडपुराण 1.109.38-39

सबके राम एक हैं

डॉ. नरेन्द्रकुमार मेहता
'मानसत्री', मानस शिरोमणि, विद्यावाचस्पति एवं विद्यासागर
सीनि. एमआईजी-103, व्यास नगर, ऋषिनगर विस्तार,
उज्जैन, -456010, मध्य प्रदेश

हिन्दी के आधुनिक आलोचकों ने सगुण-निर्गुण, रामाश्रयी शाखा, कृष्णाश्रयी शाखा आदि भेदोपभेद कर भारतीय समन्वय के सिद्धान्त को तहस-नहस कर डाला है। ज्ञान. योग, क्रिया, एवं चर्या में से ज्ञानपाद देवता के निर्गुणात्मक स्वरूप का वर्णन करता है, तो वहीं क्रिया एवं चर्यापाद में वे ही देव सगुण रूप में होंगे। ये चारों पाद भारतीय वाङ्मय में अन्तर्निहित अंग हैं। इनके बीच भेद-भाव करने पर भयंकर परिणाम होंगे। यहीं हुआ है, जब हम कहते हैं कि कबीर के राम और तुलसी के राम एक नहीं हैं। गुरु नानकदेव के राम को हमने निर्गुण धारा का नाम दे दिया, मीरा के राम को अलग कर दिया। पर यदि देखें तो वाल्मीकि, तुलसी, कबीर, मीरा, गुरु नानकदेव सबके राम एक ही हैं; सबके बीच एक समन्वय है; ज्ञान और क्रिया के अध्यायों में जिस प्रकार भेद का अध्यास हम पाते हैं, वैसा ही कुछ है। विद्वान् लेखक ने भली भाँति सिद्ध किया है कि सबके राम एक ही हैं।

महर्षि वाल्मीकि रामायण के राम

ब्रह्माजी ने महर्षि वाल्मीकि को वरदान देकर कहा- पुण्यमयी मनोरम कथा कहो। पृथ्वी पर जब तक गिरि और सरिताएँ हैं, तब तक श्रीरामकथा लोकों में प्रचारित होती रहेगी यथा-

कुरु रामकथां पुण्यां श्लोकबद्धां मनोरमाम्।
यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले॥
तावद् रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति ।
यावद् रामस्य च कथा त्वत्कृता प्रचरिष्यति॥[1]

ब्रह्माजी ने वाल्मीकिजी से कहा कि तुम श्रीरामचन्द्रजी की परम पवित्र एवं मनोरम कथा को श्लोकबद्ध करके रचना करो। इस पृथ्वी पर जब तक नदियों और पर्वतों की सत्ता रहेगी, तब तक संसार में रामायण की कथा का प्रचार होता रहेगा। जब तक तुम्हारी बनाई हुई रामायण का (श्रीरामकथा) तीनों लोकों में प्रचार रहेगा।

वाल्मीकिजी ने नारदजी से पूछा कि हे मुनि! इस समय इस संसार में गुणवान्, वीर्यवान्, धर्मज्ञ, उपकार माननेवाला, सत्यवक्ता और दृढ़ प्रतिज्ञ कौन है? सदाचार से युक्त समस्त प्राणियों का हित साधक विद्वान, सामर्थ्यशाली और एकमात्र प्रियदर्शन पुरुष कौन है?

1 वाल्मीकि रामायण : बालकाण्ड, 35. 36-37

मन पर अधिकार रखनेवाला, क्रोध को जीतनेवाला कान्तिमान और किसी की भी निन्दा नहीं करनेवाला कौन है? तथा संग्राम में कुपित (क्रोधित) होने पर जिससे देवता भी डरते हैं? महर्षे मैं यह सुनना चाहता हूँ इसके लिए मुझे बड़ी उत्सुकता है और आप ऐसे महापुरुष को जानने में समर्थ हैं।

महर्षि वाल्मीकि ने इन वचनों को सुनकर तीनों लोकों का ज्ञान रखनेवाले नारदजी ने उन्हें सम्बोधित करके कहा- अच्छा सुनिये और फिर प्रसन्नतापूर्वक बोले -

बहवो दुर्लभाश्चैव ये त्वया कीर्तिता गुणाः।
मुने वक्ष्याम्यहं बुद्ध्वा तैर्युक्तः श्रूयतां नरः॥
इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः।
नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान् धृतिमान् वशी॥[2]

मुने! आपने जिन दुर्लभ गुणों का वर्णन किया है, उनसे युक्त पुरुष को मैं विचार करके कहता हूँ आप सुने। इक्ष्वाकु के वंश में उत्पन्न हुए एक ऐसे पुरुष हैं, जो लोगों में राम नाम से विख्यात हैं वे ही मन को वश में रखनेवाले, महाबलवान् कान्तिमान, धैर्यवान् और जितेन्द्रिय हैं। वे बुद्धिमान नीतिज्ञ, वक्ता, शोभायमान तथा शत्रुसंहारक है।

इस प्रकार वे धर्म के ज्ञाता, सत्यप्रतिज्ञ तथा प्रजा के हित साधन में लगे रहनेवाले हैं। वे यशस्वी इतनी पवित्र जितेन्द्रिय और मन को एकाग्र रखनेवाले हैं।

सर्वदाभिगतः सद्भिः समुद्र इव सिन्धुभिः।
आर्यः सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः॥[3]

जैसे नदियाँ मिलती हैं, उसी प्रकार सदा श्रीराम से साधु पुरुष मिलते रहते हैं। वे आर्य एवं सबमें समान भाव रखनेवाले हैं, उनका दर्शन सदा ही प्रिय मालुम होता है।

इस प्रकार श्रीराम में अनेक गुण हैं अतः आज भी हर परिवार कहता है कि बेटा (पुत्र) हो तो राम जैसा। जिन परिवारों में रामायण के आदर्शों का अनुसरण एवं आचरण होता है वहाँ सुख, समृद्धि और शान्ति की स्थापना हो जाती है, जिन परिवारों में रामायण के आदर्श नहीं होते हैं वहाँ महाभारत हो जाती है अर्थात् परस्पर युद्ध और विनाश हो जाता है। श्रीराम का अर्थ प्रेम और त्याग का जीवन। आज हमें परिवार में श्रीराम सा चरित्र निर्माण करने की नितान्त आवश्यकता है तभी परिवार में सुखी समृद्ध और शान्तिपूर्वक जीवन व्यतीत कर सकेंगे। अन्त में यह कथन प्रसिद्ध है-

रामेण सदृशो देवो न भूतो न भविष्यति।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन रामचन्द्रं प्रपूजयेत्॥[4]

सूरदासजी के राम

जिन पर भगवान् की कृपा की वर्षा होती है, उनमें संकीर्णता अथवा भेददृष्टि कभी भी नहीं होती है। यद्यपि सूरदासजी के परम आराध्य श्रीकृष्ण ही है किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण और श्रीराम में सूरदासजी अभेद बुद्धि के महान् सन्त हैं। सूरदासजी के जो प्रसिद्ध एवं साहित्य जगत् में पद प्रचलित हैं, उन्हीं के आधार पर विशेष रूप से श्रीरामजी के भक्तिपूर्ण पदों को दिया जा रहा है। प्रस्तुत पद सूर-विनय पत्रिका नाम से संगृहीत पुस्तक में से कुछ पद सरल भावार्थ सहित है। इससे इन पदों के अर्थ को हृदयङ्गम करने में सर्वधारणों एवं सुधीजनों को सुविधा एवं आसानी होगी।

बड़ी है राम नाम की ओट।
सरन गए प्रभु काढ़ि देत नहिं करत कृपा कैं कोट॥
बैठत सबै सभा हरि जू की, कौन बड़ौ को छोट?
'सूरदास' पारस के परसै मिटति लोह की खोट॥[5]

2 वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड 1.7-8 3 वाल्मीकि-रामायण : बालकाण्ड 1.16.
4 आनन्द रामायण : मनोहरकाण्ड, अध्याय 9, 167. पं. रामतेज पाण्डेय (सम्पादक) चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली।
5 सूर-विनय पत्रिका : राग कान्ही, 141. गीता प्रेस गोरखपुर, उ. प्र.

श्रीरामनाम का आश्रय सबसे महान् है। शरण में जाने पर श्रीराम किसी को निकाल नहीं देते अर्थात् शरणागत का त्याग नहीं करते हैं। अपितु उसे कृपारूपी दुर्ग (किले) में रख लेते हैं। श्रीहरि की सभा में सभी बैठते हैं। सभी शरण ले सकते हैं। वहाँ कौन बड़ा और कौन छोटा सभी एक समान रहते हैं। सूरदासजी कहते हैं कि पारस का स्पर्श होने पर लोहे का दोष मिट जाता है। इसी प्रकार भगवान् (श्रीराम) के शरणागत होने पर जीव के दोष नष्ट हो जाते हैं।

जी तू राम-नाम-धन धरतो।
अब कौ जन्म, आगिली तेरौ, दोऊ जन्म सुधरतौ॥
जम की त्रास सबै मिटि जाती, भक्त नाम तेरौ परती।
तंदुल - विरत सर्मपि स्यामकौं, संत परोसी करतौ॥
होती नफा साधु की संगति, मूल गाँठि नहि टरती।
'सूरदास' बैकुठ-पैंठ मैं, कोउ न फैट परकतौ॥[6]

यदि तू श्रीरामनाम रूपी धन को एकत्र करता अर्थात् श्रीरामनाम का जप करता तो यह जन्म और अगला जन्म इस प्रकार दोनों जन्म ही सुधर जाते। यमराज का सारा भव मिट जाता और तेरा नाम भक्त पड़ जाता। श्यामसुन्दर को चावल और घी समर्पित करके भगवान् को भोजन के पदार्थो का भोग लगाकर यदि सन्तों को भोजन कराता तो साधु पुरुषों का संग लाभ (सत्संग में) मिलता अर्थात् सत्संग प्राप्त होता जिससे श्रीरामनाम भजन रूपी मूलधन गाँठ में से गिरता नहीं। सत्संग से यह ज्ञात हो जाता है कि भजन का उपयोग सांसारिक कामना पूर्ति के लिए नहीं करना चाहिए। सूरदासजी कहते फिर बैकुण्ठ रूपी बाजार में कोई तेरी फेंट पकड़ता अर्थात् तू यहाँ क्यों आया? यह कहकर कोई नहीं रोकता।

राम नाम बिनु क्यौ छूटोगे, चंद गहै ज्यौ केत।
सूरदास कछु खरच न लागत, राम नाम मुख लेत॥[7]

राहुग्रस्त चन्द्रमा के समान रामनाम लिए बिना (संसार से) तू कैसे छूट सकता है। (यह पुराणों की कथा में वर्णित है कि भगवान् के चक्र के द्वारा ठराये जाने पर ही राहु चन्द्रमा या सूर्य को छोड़ता है) सूरदासजी कहते हैं कि मुख में रामनाम लेने में कुछ खर्च तो नहीं लगता फिर भी क्यों रामनाम नहीं लेता है?

मीरा के राम

शायद शीर्षक देखकर आपको आश्चर्य हुआ होगा कि मीरा श्रीकृष्ण भगवान् की अनन्य भक्त होने के साथ ही साथ श्रीराम की भक्ति में मग्न हो जाती थी। इस बात को सदा स्मरण रखना चाहिये कि हमारी संस्कृति सदैव समन्वयवादी रही है। मीरा चित्तौड़ के राजा महाराजा साँगा की पुत्रवधू थी। उन्होंने महलों के सुख-ऐश्वर्य एवं वैभव को तिलाञ्जलि देकर वृन्दावन में भगवान् गिरधर गोपाल की भक्ति साधना में लीन होकर जीवन व्यतीत किया। देखने एवं सुनने में ऐसा लगता है कि मीराजी ने प्रमुख रूप से श्रीकृष्ण की ही उपासिका के रूप में ख्याति प्राप्त की थी। मीरा के पदों का अध्ययन करने पर पता चलता है कि उनके अनेक पदों में श्रीरामनाम के प्रति अपूर्व निर्मल श्रद्धा और अटूट निष्काम भक्ति की झलक स्पष्ट दिखायी देती है। यद्यपि उन्होंने अपने पदों में श्रीकृष्ण के सगुण रूप का माधुर्यपूर्ण सौन्दर्य निरूपित किया है किन्तु उनके ही अनेक प्रकीर्ण पदों में निर्गुण रामनाम की महिमा का यशोगान भी गाया गया है। मीरा की दृष्टि में राम और कृष्ण में कोई भेद नहीं है अर्थात उनकी अभेद भक्ति ही थी। एक ओर वे साधना के क्षेत्र में श्रीकृष्ण के सगुण रूप के प्रति विशिष्ट रूप से आकर्षित होकर गुणगान करती थी तो दूसरी तरफ साथ ही साथ रामनाम के प्रभाव और महिमा का गान किए बिना नहीं रहती थी। इस प्रकार उनकी समन्वयवादी या उदार प्रवृत्ति की भक्ति थी।

6 सूर-विनय पत्रिका राग सोरठ 145, उपरिवत्। 7. सूर-विनय पत्रिका, 98, उपरिवत्।

मीरा के पदों में श्रीराम के वर्णन का कारण तुलसीदासजी की प्रेरणा से एवं भक्तिभावना से प्राप्त होता है। तुलसीदासजी का प्रभाव मीरा पर इतना अधिक पड़ा कि वे भगवद्भक्ति साधना, रामभक्तिमय वातावरण से अपने आपको दूर नहीं रख सकी। मीरा ने सन्त कबीर और भक्त रैदासजी द्वारा प्रतिपादित सन्तमत की निर्गुण भक्ति की परम्परा के अनुसार अपने पदों में निर्गुण राम-तत्त्व और रामनाम का चिन्तन किया। उन्हें राम रत्न की प्राप्त भी सद्गुरु की कृपा से प्राप्त किया। मीरा ने इस प्रकार निर्गुण राम की भक्ति के रूप में जन्म-जन्म की पूँजी प्राप्त की है। मीराबाई का यह पद बहुत अधिक आज भी प्रसिद्ध है।

मैंने राम रतन धन पायौ।
वस्तु अमोलक दी मेरे सतगुर, करि किरपा अपणायौ॥
जन्म जन्म की पूँजी पाई, जग में सबै खोवायौ।
खरचै नहिं कोई चोरन लेवै, दिन-दिन बढ़त सवायौ॥
सत की नाव, खेवटिया सतगुर, भवसागर तरि आयो।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, हरखि हरखि जस गायौ॥[8]

संसार सागर (भवसागर से पार उतरने के लिये उन्होंने प्रभु के विरह में पदों की रचना कर रामनाम का बेड़ा बाँधा। वे जीवनभर प्रभु के वियोग में रो-रोकर अपने आपको यही कहकर ठाँस बँधाती थी कि भवसागर के प्रबल वेग और अनन्त गहरी धारा में रामनाम से पार किया जा सकता है।

नाहि ऐसी जनम बारंबार।
का जानूँ कछु पुण्य प्रगटे मानुसा अवतारा।
भौसागर अति जोर कहिये अनंत ऊंडी धार।
राम-नाम का बाँध बेड़ा उतर परले पार॥
साधु संत महंत ग्यानी चलत करत पुकार।
दास मीरा लाल गिरधर जीवणा दिन च्यार॥[9]

मीरा ने अपने विरहमय जीवन में श्रीकृष्ण और श्रीराम में कोई भेद न करके उन दोनों को अपना सर्वस्व स्वीकार किया है। वह श्रीराम को अपना सब कुछ मानती थी। राम के बिना उन्हें कुछ भी अच्छा नहीं लगता है उनका यह विरह गीत इस बात का प्रतीक है-

मेरे प्रीतम प्यारे राम कूँ लिख भेजूँ रे पाती।
स्याम सनेसी कबहुँ न दीन्हीं जानि बूझ गुझबाती॥
डगर बुहाऊँ पंथ निहारुँ, जोई जोई आँखिया राती।
राति दिवस मोहिकल न पढ़त है हियो फटत मेरी छाती॥
मीरा के प्रभु कब रे मिलोगे पूरब जनम के साथी॥[10]

सिख पंथ में राम

सिख पंथ के संस्थापक श्री गुरुनानक देवजी महाराज की 15वीं शताब्दी में उनकी अमृत वाणी से भारत धन्य हुआ। वस्तुतः श्री गुरुनानक देवजी महाराज के आविर्भाव वर्ष 1469 के समय भारत की धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियाँ अत्यन्त ही विषम थीं। धर्म में जहाँ ठोंग, पाखण्ड और आडम्बर का बोल बाला था, वहीं भारतीय समाज जात-पांत, ऊँच-नीच के भेदभाव से ग्रस्त था और जनसामान्य तत्कालीन क्रूर शासकों की अन्यायपूर्ण अनीति से पीड़ित था। उस विषम परिस्थिति में श्रीगुरुनानक देवजी महाराज ने विश्वशान्ति और विश्व कल्याण के लिए एक ओंकार (एकेश्वरवाद) का दिव्य सन्देश दिया कि ईश्वर एक है। वही करता पुरख है अर्थात इस सृष्टि का सर्जक और पालक है। सभी विश्व के प्राणी उनकी सन्तान है। इस सन्देश में ही उनकी श्रीराम की भक्ति भी दिखाई देती है तथा उन्होंने उसे जीवन में अनुकरण किया था। उनके बारे में उनकी श्रीराम भक्ति की कहानी प्रसिद्ध है।

8 मीरा मंदाकिनी, नरोत्तम दास स्वामी (सम्पादक), गयाप्रसाद एंड सन्स आगरा, पद सं. 105
9 मीरा मंदाकिनी, उपरिवत्, पदस. 88
10 मीरा-मंदाकिनी, उपरिवत्, पदसं. 53

श्रीगुरुनानक देवजी बाल्यावस्था से ही श्रीराम के परम भक्त थे। वे श्रीरामभक्ति में हर समय सराबोर रहा करते थे तथा आपको बाल्यावस्था से श्रीरामभक्ति का नशा सवार हो गया था और आप सदैव श्रीरामभक्ति में डूबे रहा करते थे। जब परिवारवालों ने देखा कि वे दिन-रात श्रीराम- भजन में संलग्न रहते हैं तथा घर का कोई काम नहीं करते हैं, इसलिए उनको खेत पर चिड़िया उड़ाने का काम सौंप दिया गया कि तुम चिड़िया उड़ाकर खेत की रक्षा किया करो। वे यह बात सुनकर खेत पर चले गए पर तब उन्हें जीवमात्र में अपने परम इष्टदेव भगवान् श्रीराम को ही दिखते थे। श्रीगुरुनानक देवजी महाराज भला उन चिड़ियों में अपने परम इष्टदेव श्रीराम को कैसे न देखते? वे चिड़ियों में भी अपने श्रीराम को देखकर कह उठे-

रामजी की चिड़िया, रामजी का खेत।
खाओ चिड़िया भर-भर पेट॥

श्रीगुरुनानकदेवजी महाराज ने इस संसार को दुःखों की खान माना है और श्रीरामनामामृत का पान करना ही सब सुखों का केन्द्र बिन्दु माना है यथा-

नानक दुखिया सब संसार।
सुखिया वही जो नाम अधारा॥

आप समाज में तंबाकू, गाँजा, भाँग, सुल्फा आदि सब नशों के घोर विरोधी थे। बस अपने श्रीराम के नशे को ही सर्वोपरि महत्त्व देते थे और उसी श्रीरामभक्ति के प्रेम के नशे में हर क्षण झूमते रहते थे। एक स्थान पर आपने कहा है-

भाँग तंबाकू छोतरा उतर जाय परभात।
नाम खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन रात॥

सन्त कबीर और उनकी रामभक्ति

सन्त कबीर के अनुसार श्रीराम का भजन ही इस जीवन का परम लक्ष्य है। राम के अतिरिक्त कुछ भी इस संसार में सत्य नहीं है। यह जीवन और उसकी सुख-सुविधाओं के लिए इकट्ठा किए जानेवाला धन क्षणभंगुर है। उदाहरणार्थ, रावण की सोने की लंका को नश्वरता का उदाहरण देते हुए वे कहते हैं कि इस भौतिक जगत् में जब रावण का ऐश्वर्य स्थायी नहीं रह सका तो अन्य की क्या बिसात है। कबीर के ईश्वर यद्यपि निर्गुण-निराकार है, लेकिन वे उन्हें राम का ही नाम देते हैं। यह बात इन साखियों में स्पष्ट है-

कबिरा सब जग निरधना धनवन्ता नहि कोय।
धनवन्ता सोइ जानिये जाके रामनाम धन होय॥
लूट सके तो लूट ले, राम नाम की लूट।
फिर पाछे पछताहुगे, प्राण जाहिगे छूट॥
कबीर आपन राम कहि, औरन राम कहाय।
जा मुखराम न नीसरै, ता मुख राम कहाय॥
जबहि राम हिरदै धरा, भया पाप का नाश।
मानी चिनगी आग की, परी पुराने घास।

इस प्रकार स्पष्ट है कि सन्त कबीर कलिकाल में मानव जीवन के कल्याण का एकमात्र उपाय श्रीराम नाम का कीर्तन और श्रीरामकथा का श्रवण करने में विश्वास रखते हैं।

श्रीरामचरितमानस में श्रीराम

गोस्वामी तुलसीदासजी ने श्रीरामकथा को जनमानस की जनभाषा में सरल-सुबोध भाषा में प्रकट कर भारतीयों में घर-घर पारायण करने की श्रद्धाभक्ति उत्पन्न कर दी। इस प्रकार श्रीरामचरितमानस ने भारतीयों में समरसता सद्भाव एवं राष्ट्रीय एकता के सूत्र में बाँधने का कार्य किया। आधुनिक सन्दर्भ में श्रीरामचरितमानस हमारे जीवन में प्रकाश स्तम्भ का कार्य कर रही है। यह प्रसिद्ध उक्ति कि रामायण के सम्बन्ध में प्रचलित है तथा चरितार्थ भी है कि जो रामायण में नहीं है वह विश्व में भी नहीं क्योंकि रामायण (श्रीरामचरितमानस) केवल भारत की ही वरोहर नहीं है; अपितु मानव मात्र की महिमा का गुणगान करनेवाली विश्वव्यापी कृति है।

तुलसीदासजी के समय में जातिप्रथा के गुणों की अपेक्षा दुर्गुणों का बाहुल्य था; अतः उन्होंने इन्हें समाप्त करने का भगीरथ प्रयास कर मानस में अनेक प्रसंगों के माध्यम से समाज देश को दिया जिसकी प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है। श्रीराम गुणों की खान हैं इसलिए श्रीराम को गुणों का भण्डार (खान) कहा गया है।

कहाँ कहाँ लगि नाम बड़ाई।
रामु न सकहिं नाम गुन गाई॥[11]

नाम लेत भवसिंधु सुखाहीं।
करहु बिचारु सुजन मन माहीं॥[12]

यद्यपि प्रभु के नाम अनेका।
श्रुति कह अधिक एकतें एका॥
राम सकल नामन्ह ते अधिका।
होउ नाथ अघ खग गन बधिका॥[13]

अन्त में, श्रीरामचरितमानस में मानव जीवन का लक्ष्य पूरा करने का बड़ा ही सुन्दर उपाय बताया गया है यथा-

कलिजुग जोग न जग्य न जाना।
एक अधार राम गुन गाना॥
सब भरोस तजि जो भज रामहि।
प्रेम समेत गाव सुन ग्रामहि॥[14]

सन्दर्भ ग्रन्थ-

1. श्रीमद् वाल्मीकीय रामायण, गीता प्रेस, गोरखपुर
4. कल्याण वर्ष 68 श्रीरामभक्तिअंक गीता प्रेस गोरखपुर
3. कबीर वाणी, लालचन्द दूहन जिज्ञासु, मनोज पब्लिकेश, नई दिल्ली
4. श्रीरामचरितमानस गीता प्रेस गोरखपुर, उ.प्र.

***

11 श्रीरामचरितमानस : बालकाण्ड, 26.4
12 श्रीरामचरितमानस : बालकाण्ड, 25-2
13 श्रीमानस अरण्यकाण्ड 42 (क)
14 श्रीरामचरितमानस उसकाण्ड 103 (क) 3

पाण्डुलिपियों में विभिन्न प्रकार के पाठ-भेद

- **अधिक पाठ (Interpolated Text)**

  कोई अंश, श्लोक, अर्द्धश्लोक का होना जो अन्य पाठों में नहीं है।

- **लुप्त-पाठ (Omitted Text)**

  कोई अंश, श्लोक, अर्द्धश्लोक का न होना, जो अन्य पाठों में है।

- **प्रतिस्थापित पाठ (Substituted Text)**

  इसे पाठान्तर कहते हैं। एक पाठ के स्थान पर बदला हुआ पाठ।

- **क्रमपरिवर्तित पाठ (Permuted text)**

  सभी पाठ समान रहने पर यदि पाठ का क्रम परिवर्तित हो।

- **अपपाठ, भ्रष्टपाठ (Corrupted Text)**

  जो अर्थ की दृष्टि से असंगत हो। इसे पाठ-भेद की कोटि में नहीं रखा गया है। इसका उल्लेख भी पाद-टिप्पणी में आवश्यक नहीं है।

धर्मायण की अंक संख्या 67 में प्रकाशित लेख की पुनःप्रस्तुति

मॉरिशस में रामायण

डॉ. श्यामसुन्दर घोष
ऋतंवरा,
पो.+जिला- गोड्डा, झारखण्ड, पिन- 814933

सन् 1834 ई. में भारत से गिरमिटिया मजदूरों को इस्ट इंडिया कम्पनी मॉरिशस ले गयी। जाते समय उनपर किसी भी वस्तु को अपने साथ न ले जाने की पाबंदी थी। वे जब जाने लगे तो अपना सबकुछ छोड़कर भी रामचरितमानस की प्रति अपने साथ लेते गये और जब उन्हें रात को फुरसत मिलती थी उसका पाठ करते थे। यह है रामचरितमानस का लोकप्रभाव।

मॉरिशस के पार्लियामेंट ने 'रामायण अधिनियम' बनाया, जिसके तहत आज भी वहाँ रामकथा एवं रामचरितमानस प्रचार-प्रसार के लिए सरकारी स्तर पर काम हो रहे हैं। पर जहाँ रामरतिमानस की रचना हुई, जहाँ मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम प्रकट हुए वहाँ इस पर उँगली उठायी जा रही है। इसी को कहते हैं- चिराग तले अँधेरा।

धर्मायण के अक्टूबर-दिसम्बर में पूर्वप्रकाशित डॉ. श्यामसुन्दर घोष का यह आलेख आज एकबार फिर प्रासंगिक हो चला है।

'मानस-संगम' (श्रीप्रयाग नारायण मन्दिर शिवाला, कानपुर- 1) के संयोजक मित्रवर श्री बद्रीनारायण तिवारी जब-तब अच्छी और महत्त्वपूर्ण पुस्तकें मुझे भिजवाते रहते हैं। कभी-कभी ऐसी पुस्तकें वे खुद अपनी मर्जी से भेजते हैं और कभी-कभी मेरे पत्र लिखने, या फोन करने पर भिजवाने का अनुग्रह करते हैं।

इस बार उन्होंने पुस्तकों का जो पैकेट भिजवाया उसमें एक पुस्तक 'रामायण इन पार्लियामेन्ट' भी है, ऐसा मेरे सहयोगी-सहायक ने बताया। मैं सोचने लगा- पार्लियामेन्ट में रामायण को लेकर ऐसी बहस कब चली कि उसको लेकर 'रामायण इन पार्लियामेन्ट' पुस्तक छपने की नौबत आ गई? मुझे याद नहीं आ रहा था कि रामायण को लेकर कभी इतना व्यापक विचार-विमर्श हुआ हो कि पुस्तक छपवाकर उसकी जानकारी जनता को देने की आवश्यकता अनुभव की गई।

मैंने उत्सुकतावश सबसे पहले वही पुस्तक उठाई और उलट-पुलटकर देखने पर जाना कि यह पार्लियामेन्ट भारत की न होकर, मारिशस की है, जिसमें रामायण सेन्टर की स्थापना के उद्देश्य से 03-04 -2001 को श्रीरामनवमी के अवसर पर एक प्राइवेट बिल (द्वितीय वाचन) प्रस्तुत किया गया। यह बिल एक बार पहले भी 30 जून, 2000 को मारिशस की पार्लियामेन्ट में लाया गया था। आकस्मिक ढंग से पार्लियामेन्ट के भंग हो जाने से इसपर बहस न हो सकी थी और यह पास नहीं हो सका था। द्वितीय वाचन के लिए इसे प्रस्तावित करते हुए प्रस्तावक ने इसे राम के

जीवन से जोड़कर देखा था और कहा था कि जैसे राम के राज्याभिषेक की सारी तैयारियाँ पूरी हो चुकी थीं और पूरी अयोध्या उम्मीद से भरी थी कि अब समदर्शी राम उनके राजा होंगे, वैसे ही प्रथम बार ही मारिशस की पार्लियामेन्ट द्वारा 'रामायण सेंटर' बिल पास हो जाएगा, मारिशसवासियों को इसकी पूरी उम्मीद थी। पर जैसा कि राम के साथ हुआ, वे राजा तो नहीं ही हुए, उलटे चौदह वर्षों के लिए उन्हें वन जाना पड़ा, वैसे ही मारिशस की पार्लियामेन्ट अचानक भंग हो जाने से मारिशसवासियों को बड़ा धक्का लगा और बिल जहाँ का तहाँ पड़ा रह गया। पर धन्य है मारिशसवासियों का राम और रामायण-प्रेम, कि नई पार्लियामेन्ट के गठन होते ही दुबारा इसे सदन में प्रस्तुत किया गया।

रामायण सेन्टर बिल लाने के पीछे ये उद्देश्य बताए गए-

(1) रामायण द्वारा प्रेरित सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों को बढ़ावा देना और प्रचारित करना।

(2) रामायण के प्रचार-प्रसार के लिए तत्सम्बन्धी सामग्री का प्रचार-प्रसार और वितरण। 3) रामायण - सम्बन्धी प्रवचन, विमर्श और व्याख्यान का आयोजन।

(4) रामायण के सन्देशों और आशयों को और विवृत करना।

(5) इस सम्बन्ध में स्कूलों, वाचनालयों और पुस्तकालयों का संचालन तथा प्रबन्धन।

मारिशस की पार्लियामेन्ट में रामायण सेन्टर बिल का लाया जाना न तो आकस्मिक था और न इसके पीछे कोई राजनीतिक दृष्टि या बाध्यता थी। यह मारिशस के बहुजातीय, बहुभाषीय और बहुधार्मिक समाज के मूल में निहित गूढ़ राष्ट्रीय भावों का प्रतिफलन ही था। मारिशस बहुलतावादी समाज और राष्ट्र होते हुए भी सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से एक अद्भुत समन्वय का नमूना पेश करता है

बताया गया कि जब भारतीय मूल के लोग मजदूरों और श्रमिकों के रूप में मारिशस लाए गए, तब तो उनके पास रामायण की विभिन्न भाषाओं के प्रारूप थे। उनके पास मराठी, तमिल, तेलुगु गुजराती, हिन्दी सभी भाषाओं की रामायणें थीं। जब वे दिन भर के कठिन श्रम और शोषण से थक-चुर कर सन्ध्या में घर लौटते थे, तब उनकी आशा, उनका आश्वासन, उनका प्रतिरोध, उनकी निष्ठा और संघर्षप्रियता को रामायण का ही सम्बल प्राप्त था। उसी के सहारे उन्होंने कठिन श्रम किया, दुर्धर्ष जीवन जिया और मारिशस की बंजर धरती को अपने खून-पसीने से सींचकर सोना उगलने के लायक बनाया।

इस प्रकार भारतवासियों ने एक नए राष्ट्र के निर्माण में अपना अद्भुत योगदान दिया। यह सब हुआ रामायण के कारण, उसकी सीख के बल पर, उसके चरित्रों से प्रेरणा लेकर। उन्होंने न केवल अपना जीवन और भविष्य सँवारा, वरन् देश को भी गढ़ा और सँवारा, उसे एक नया चेहरा दिया। तो ऐसा था रामायण का स्थान और प्रभाव।

मारिशस में रामायण का स्थान गीता, बाइबिल, कुरान, गुरुग्रन्थ साहब-जैसे पवित्र और प्रेरणाप्रद ग्रन्थों के समान है। सच तो यह है कि रामायण मारिशस का राष्ट्रीय ग्रन्थ है। मारिशसवासियों ने इसे केवल एक हिन्दू धर्मग्रन्थ या काव्य के रूप में कभी देखा ही नहीं। मारिशस की पार्लियामेन्ट में हुई बहसों के जो विवरण लिपिबद्ध हैं, वे प्रमाणित करते हैं कि यहाँ के सभी पक्षों ने सत्तापक्ष ने भी, और विपक्ष ने भी, इसे एक स्वर से अद्भुत प्रेरणापरक ग्रन्थ माना है।

इन व्याख्यानों में रामायण का जैसा मूल्यांकन हुआ है, जैसा विशदीकरण हुआ है, वह अब तक कहीं देखने में नहीं आया है। यह कोई साहित्यिक, सांस्कृतिक, काव्य-शास्त्रीय या भक्तिभावमूलक अध्ययन नहीं है। यह आज की वैश्विक परिस्थितियों में

एक समाजशास्त्रीय और मानवीय व्यावहारिक विमर्श है।

मेरा खयाल है कि मारिशस के सांसदों ने जिस विदग्धता से, जिस विशदता से, जिस आधुनिक-सह पारम्परिक दृष्टि से राम और रामायण पर विचार किया है, वह अद्भुत है। यह आज के लिए नितान्त प्रासंगिक भी है।

रामायण कहने से हम साधारणतः गोस्वामी तुलसीदास-कृत 'रामचरितमानस' का ही अर्थ लेते हैं। मारिशसवासी भी मूलतः 'रामचरितमानस' के ही प्रेमी, भक्त और अनुयायी हैं। उनके पुरखे 'रामचरितमानस' की प्रति लेकर ही मारिशस गए वे उसी के दोहे, चौपाई और पद गाते थे, उसी से शक्ति और प्रेरणा पाते थे, यह पुस्तक के व्याख्यानों से पता चलता है, पर मारिशस में वाल्मीकि और कम्बन की रामायणों की भी लोगों को जानकारी है और गैरहिन्दी भाषाभाषी मूल के लोग अपनी-अपनी भाषा की रामायणों के प्रेमी और हिमायती हैं।

मारिशसवासियों के कारण रामायण को एक बृहत्तर मानवीय परिवेश मिला है। इन व्याख्यानों में कई नई जानकारियाँ, कई नई युगोचित व्याख्याएँ और मार्मिक प्रसंगों का विनियोग हुआ है। एक जगह संस्कृति की व्याख्या इस प्रकार की गई है- *"कल्चर मीन्स ओपननेस ऑफ माइण्ड, अण्डर स्टैण्डिंग ऑफ अदर्स एण्ड द ओपनिंग आउट ऑफ दि इण्डीविजुअल"* (पृ. 56)।

इसी प्रकार धर्म और पुराणशास्त्र पर विचार करते हुए उसके तीन प्रमुख स्तम्भों का उल्लेख किया गया है- दर्शन, कर्मकाण्ड और पौराणिकी (मायथोलॉजी)। इस व्याख्यान में मायथोलॉजी के महत्त्व पर कुछ विशेष ही जोर दिया गया है। इसे सभी धर्मों में रीढ़वत् बताया गया है (पृ. 76)।

पुस्तक में न केवल राम के चरित्र का सटीक और युगानुकूल वर्णन और विश्लेषण है, वरन् सीता, जनक, हनुमान् आदि पर भी प्रासंगिक विचार किया गया है। राम से हम तादात्म्य अनुभव क्यों करते हैं? इसलिए कि हम जानते हैं कि राम ने बहुत सहा है, हम भी कठिन परिस्थितियों में बहुत सहते हैं। इसलिए राम हमें अपने लगते हैं।

बताया गया है कि राम के चरित्र में एक आन्तरिक सन्तुलन है। हम भी इसी सन्तुलन द्वारा आज की कठिन समस्याएँ सुलझा सकते हैं। राम के जीवन के एक बड़े मार्मिक प्रसंग का उल्लेख है, जो बंगला रामायण से उद्धृत है। जब राम के सैनिक लंका पहुँचने के लिए समुद्र पर सेतु बना रहे थे, तब राम ने देखा कि उनके नाम लिखे पत्थर पानी पर तैर रहे हैं। यह देखकर उनकी आँखों में आँसू आ जाते हैं। इससे लक्ष्मण बहुत चकित और द्रवित होते हैं और राम से पूछते हैं कि क्या हुआ, जो आप इतने विचलित हैं? इसपर राम कहते हैं- जब मेरा भाग्य मेरे विरुद्ध था, तब सारे प्रयासों और सबकी इच्छाओं के बावजूद मेरे सिंहासनारूढ़ होने पर ग्रहण लग गया और मुझे जंगल जाना पड़ा और आज मेरा सौभाग्य तो देखो कि मेरे नाम पर पत्थर भी पानी पर तैर रहे हैं।

व्याख्याता बताते हैं कि हम राम के जीवन से 'जीवन जीने की कला' सीख सकते हैं।

इसी प्रकार वे सीता के बारे में कहते हैं- 'जब उन्होंने सब कुछ छोड़ दिया; अयोध्या का सारा राज-वैभव त्याग दिया, तब उन्होंने राम को पा लिया। लेकिन जब वही सीता स्वर्णमृग को देखकर मोहित होती हैं, तब वे राम को खो देती हैं।'

राम अपने देश-दुनिया घर-बार छोड़कर वन जाने को विवश हुए। वहाँ उन्होंने कठिन परिस्थितियों में जीवन जिया और संघर्ष किया, आदिवासियों जनजातियों को प्रशिक्षित कर सेना खड़ी की। उस

अर्धप्रशिक्षित सेना से रावण की सुगठित सुप्रशिक्षित सेना का मुकाबला हुआ और राम विजयी हुए। मारिशसवासियों के पुरुखों को भी गृह त्याग करना पड़ा, देश छोड़ना पड़ा। वे भी कठिन परिस्थितियों में जिए। यदि इस बात को लेकर भी मारिशसवासियों ने राम से अपने को जोड़ा हो तो कुछ आश्चर्य नहीं। राम-सा सौभाग्य मारिशसवासियों के पुरुखों का ही रहा, भारतवासियों का नहीं।

इसी प्रकार जनक का एक कथन उद्धृत किया गया है- *"बॉण्डलेस इज माई पोजेशन, स्टिल आई पोजेस नथिंग।"* सीमाहीन वैभव है मेरे पास, फिर भी मेरे पास कुछ नहीं है। (पृ0 67-66) यही भाव मनुष्य मात्र का होना चाहिए।

मारिशसवासी जैसे राम से अपने को तदाकृत करते हैं, वैसे ही हनुमान् से भी अपने को जुड़ा और एकतान पाते हैं। मारिशस के हर घर में महावीरी झण्डा फहराते हुए देखा जा सकता है, साथ ही हनुमान् का एक छोटा मन्दिर भी। मारिशस में हनुमान् पर अतिरिक्त ध्यान दिया जाता है। क्यों? इसलिए कि हनुमान् ने भी समुद्र लाँघा था। तब समुद्र लाँघना एक कठिन कार्य तो समझा ही जाता था, उसका निषेध भी था। समुद्र लाँघकर विदेश जाने पर लोग जातिच्युत और समाज से बहिष्कृत होते थे।

जब मारिशसवासियों के पुरखे समुद्र लाँघकर विदेश जाने को विवश और उद्धृत हुए होंगे, तब उनकी क्या मनोदशा हुई होगी? ऐसे में उन्हें हनुमान् के समुद्र लाँघने से ही प्रेरणा, शक्ति और आश्वस्ति मिली होगी। मारिशसवासी भी कहते हैं - हनुमानजी भी समुद्र लाँघते हैं और हमारे पुरखे भी समुद्र लाँघकर इस द्वीप में आए। कैसी समानता ढूँढ़ी है मारिशसवासियों ने खुद में और हनुमान् में! अब ऐसे पवनसुत, बजरंगबली, महावीर मारिशसवासियों के प्रेरणा-स्रोत क्यों न हों?

संसार में किसी विषय पर बहस हो, तो पक्ष-विपक्ष में मतभेद स्वाभाविक है। संसद राजनीति का अखाड़ा है। वहाँ हर बात राजनीतिक नजरिए से देखी जाती है, हर बात में राजनीति ढूँढ़ी जाती है। रामायण बिल को लेकर भी विपक्ष को राजनीति करने की आशंका न हुई हो, यह बात नहीं। विपक्ष के नेता ने रामायण सेन्टर बिल को लेकर राजनीति करने की आशंका जाहिर की थी। पर यह आशंका अधिक थी, आरोप कम। आशंका स्वाभाविक है। यह किसी को भी हो सकती है। पर आरोप गम्भीर होते हैं।

आशंकाओं का निराकरण हो सकता है। इसलिए जब मारिशस के संसद् में विपक्ष के नेता को बताया गया, स्पष्ट किया गया कि इस बिल के पीछे कोई राजनीति नहीं है, कोई राजनीतिक उद्देश्य नहीं है, तब सहज ही मान गए। मारिशस-संसद् के विपक्ष ने इसे सहजता से लिया, सराहा और उसमें सटीक संशोधन सुझाए। उसने बिलों के प्रस्तावकों को भी प्रभावित किया। विपक्ष ने दो संशोधन सुझाए। बिल के उद्देश्य में से एक था - *"टू प्रोवाइड गाइडेन्स एण्ड सपोर्ट फॉर द इंटेलेक्चुअल एण्ड मोरल एडवांसमेन्ट ऑफ द हिन्दू कम्युनिटी।"* इस सम्बन्ध में विपक्ष का सुझाव आया कि अन्त में *"एण्ड सोसाईटी एट लार्ज"* जोड़ दिया जाए। इसी प्रकार एक और प्रस्ताव- *"टू प्रोमोट द रामायण एण्ड द स्पेशल एण्ड कल्चरल वैल्यू फॉलोइंग देयर फ्राम"* यहाँ *"स्प्रिचुअल"* शब्द जोड़ देने का संशोधन सुझाया गया। ये दोनों ही संशोधन प्रस्ताव को और अधिक प्रभावी और लोकग्राह्य बनानेवाले थे, इसलिए सहज ही स्वीकार कर लिए गए। यह है रचनात्मक विपक्ष की भूमिका।

हम इस किताब के आधार पर कह सकते हैं कि मारिशस का विपक्ष भी रचनात्मक और सर्वसमावेशी दृष्टिवाला है।

राम और रामायण को लेकर लोगों के कई तरह के मत हैं। रामायण को दो तरह की सभ्यताओं के टकराव की कहानी भी कहा जाता है। इस ग्रन्थ में भी एक वक्ता ने बताया है कि इसे द्रविड़ क्षेत्र में आर्य सभ्यता का विस्तार क्यों नहीं माना जाए? या फिर इसे *"कन्फ्रंटेशन ऑफ टू कलचर्स ऑफ अर्बन एण्ड फारेस्ट लाइफस्टाइल्स एण्ड देयर कनफ्लिक्ट ऑफ लक्जूरियस एडमिनिस्ट्रेशन अयोध्या एण्ड इण्डलुर्गेंस इन लंका"* (पृ. 80) क्यों नहीं माना जाए?

लेकिन एक दूसरे वक्ता ने इसे दूसरे ढंग से देखा है। वे यह तो मानते हैं कि इसमें दो सभ्यताओं का संघर्ष है, पर ये दो सभ्यताएँ राम-सभ्यता और रावण-सभ्यता हैं। इसे उन्होंने एक दूसरे ढंग से इस प्रकार व्याख्यायित किया है- राम की सभ्यता 'सादा जीवन उच्च विचार' की सभ्यता है, जबकि रावण की सभ्यता 'सम्पन्न जीवन और विपन्न विचार' की सभ्यता है। यहाँ बताया गया है कि जब महारानी कौसल्या का शरीरान्त हुआ, तब उनके शव को मिट्टी से ढक दिया गया। इससे स्पष्ट है कि अयोध्या में बहुत राजकीय ताम-झाम और दिखावा नहीं था। वह एक सरल-सहज सभ्यता थी। वक्ता ने तो यहाँ तक कहा है कि अयोध्या भौतिक दृष्टि से बहुत विकसित और समृद्ध नहीं थी। शायद राम, लक्ष्मण आदि के विचरण के जो विवरण दिए गए हैं, उसमें वे बराबर नंगे पाँव घूमते दिखाए गए हैं। इससे स्पष्ट है कि राम की सभ्यता रावण की सभ्यता की तुलना में ज्यादा आमफहम है। रावण को, लंका को, सोने की लंका बनाकर और दिखाकर, ही सन्तोष हो सकता था, दशरथ ने अयोध्या को सोने की अयोध्या बनाने की बात कभी सोची भी नहीं। यदि राम की सभ्यता में विस्तारवाद के बीज होते तो वे जीती हुई लंका को विभीषण को क्यों सौंप देते?

मुझे तो लगता है कि रामायण एक घुसपैठ की कथा भी है। रावण को सोने की लंका से ही सन्तोष नहीं था। वह आर्यभूमि में, जब-तब घुसपैठ करता रहता था। उसकी इस प्रवृत्ति को विश्वामित्र ने भी समझा था। तभी वे दशरथ से राम और लक्ष्मण को माँगकर ले गए थे और रावणी घुसपैठ के प्रतिरोध के लिए उन्हें प्रशिक्षित किया था। रावण ताड़का, सुबाहु, खर, दूषण, मारीच आदि के रूप में अपने विश्वस्त अनुचर और जासूस आर्यभूमि के कई भागों में टिकाए रखता था। विश्वामित्र को लगा था कि उनका सफाया जरूरी है। यह काम राम-लक्ष्मण बखूबी कर सकते थे। राम-लक्ष्मण ने भी उनके इस दृष्टिकोण को समझा था। इसीलिए वनवास काल में उनका उद्देश्य इन दुष्ट दानवों से निबटना भी रहा होगा। शूर्पणखा भी एक घुसपैठिया ही थी, जो न केवल क्षेत्रविशेष में घुसपैठ करती थी, वरन् राम और सीता की कुटिया तक भी, रात्रि के सन्नाटे में, जाने का साहस और जुर्रत करती थी। लक्ष्मण ने उसको, उसके किए का उचित ही दण्ड दिया था। यह एक प्रकार से रावण को चेतावनी थी। पर रावण ने इसे चेतावनी के रूप में नहीं, चुनौती के रूप में लिया और बदले में सीता का अपहरण किया। अब राम के लिए यह जरूरी था कि वे रावण को उसके घर में घुसकर मारें। राम, लक्ष्मण, विश्वामित्र आदि बहुत दिनों तक प्रतिरक्षा की नीति अपनाए रहे, लेकिन रावण पर इस प्रतिरक्षात्मक नीति का कोई असर न हुआ। अन्त में राम को आक्रामक होना पड़ा और युद्ध रावण की भूमि पर ही हो, यह समरनीति अपनानी पड़ी। राम-रावण के संघर्ष को इस रूप में भी देखा जा सकता है।

उधर कई हलकों में यह तथ्य प्रचारित किया जा रहा है कि हनुमान् भारत के पहले आतंकवादी थे, जिन्होंने लंका में जाकर आतंक मचाया। यह भूल जाते हैं कि असल आतंकवादी तो रावण था, जिसने दक्षिणापथ में, न जाने कब से आतंकवाद के अनेक शिविर खोल रखे थे। आतंकवादी अपने आतंकवाद को बढ़ावा नहीं देते, वे इच्छित राष्ट्र की भूमि पर ही

आतंकवाद का ढाँचा खड़ा करते हैं। अब ऐसे आतंकवादियों को त्रस्त और पस्त करने का एक यही रास्ता रह जाता है कि उनके घर में घुसकर ही उनको उनकी औकात जताई जाए। हनुमान् ने यही किया था।

उन्होंने सोने की लंका को जलाकर रावण को यह सन्देश देने की कोशिश की थी कि यदि वह न सँभला तो उसका क्या हस्र होनेवाला है। लेकिन रावण ने यह संकेत ग्रहण नहीं किया, फलतः उसे राम ने लंका में जाकर मारा। आतंकवाद के खात्मे के लिए यह जरूरी होता है कि पहले उसके मूल स्थान की निशानदेही की जाए और वहाँ जाकर उसका ढाँचा खत्म किया जाए, उसे ही प्रतिरक्षात्मक युद्ध के लिए बाध्य किया जाए। यह नहीं होने पर आतंकवाद की रीढ़ नहीं टूटती। आज भारत की प्रतिरक्षात्मक नीति में यही खामी है। हम आतंकवादियों की खोज अपने क्षेत्र में कर रहे हैं, उनके क्षेत्र में खोज करने की नीति नहीं अपनाते। हनुमान् ने आतंकवाद को उसके घर में जाकर चुनौती दी थी। हमें हनुमान् की नीति का अनुसरण करना चाहिए।

'रामायण इन पार्लियामेन्ट' एक विचारोत्तेजक कृति है। इस ग्रन्थ में एक बात बताई गई है कि स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती मारिशस में घर-घर में 'रामचरितमानस' की प्रति दे आया करते थे। उनकी हार्दिक इच्छा रहती थी कि मारिशस रामायण- भूमि बने। उनकी इच्छा बहुत दूर तक पूरी हुई है, ऐसा माना जा सकता है। यहाँ मेरी इच्छा होती है कि 'रामायण इन पार्लियामेन्ट' की एक-एक प्रति भारत के सांसदों को दी जाए, कम-से-कम तथाकथित धर्म-निरपेक्षतावादियों को तो जरूर ही, तो शायद उनकी आँखें खुलें, उनके विचारों में कुछ तो परिवर्तन आए। उन्हें राम और रामायण की विरासत से जोड़ने की जरूरत है, विलगाने की नहीं। भारत में मुसलिम भाइयों को भी 'रामायण इन पार्लियामेन्ट' किताब पढ़नी चाहिए।

***

तुलसीदासजी का हस्तलेख

संवत् 1669 (1613ई.) में भदैनी मौजे में टोडरमल की पारिवारिक सम्पत्ति के विभाजन के लिए बने दस्तावेज पर तुलसीदासजी ने अपना आशीर्वचन लिखकर दिया था।

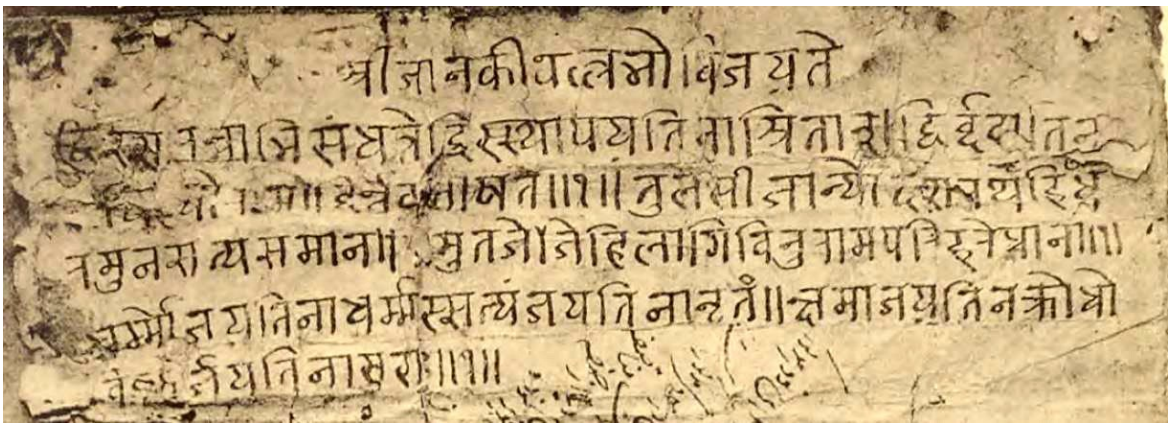

Journal of the Asiatic Society of Bengal, vol. 57, Part 1, History Literature &c. 1889.

MINISTRY OF CULTURE · GOVERNMENT OF INDIA · संस्कृति मंत्रालय · भारत सरकार · सत्यमेव जयते

urnal, As. Soc., Beng., Vol. LVII, Part I, Extra-Number, 1888.

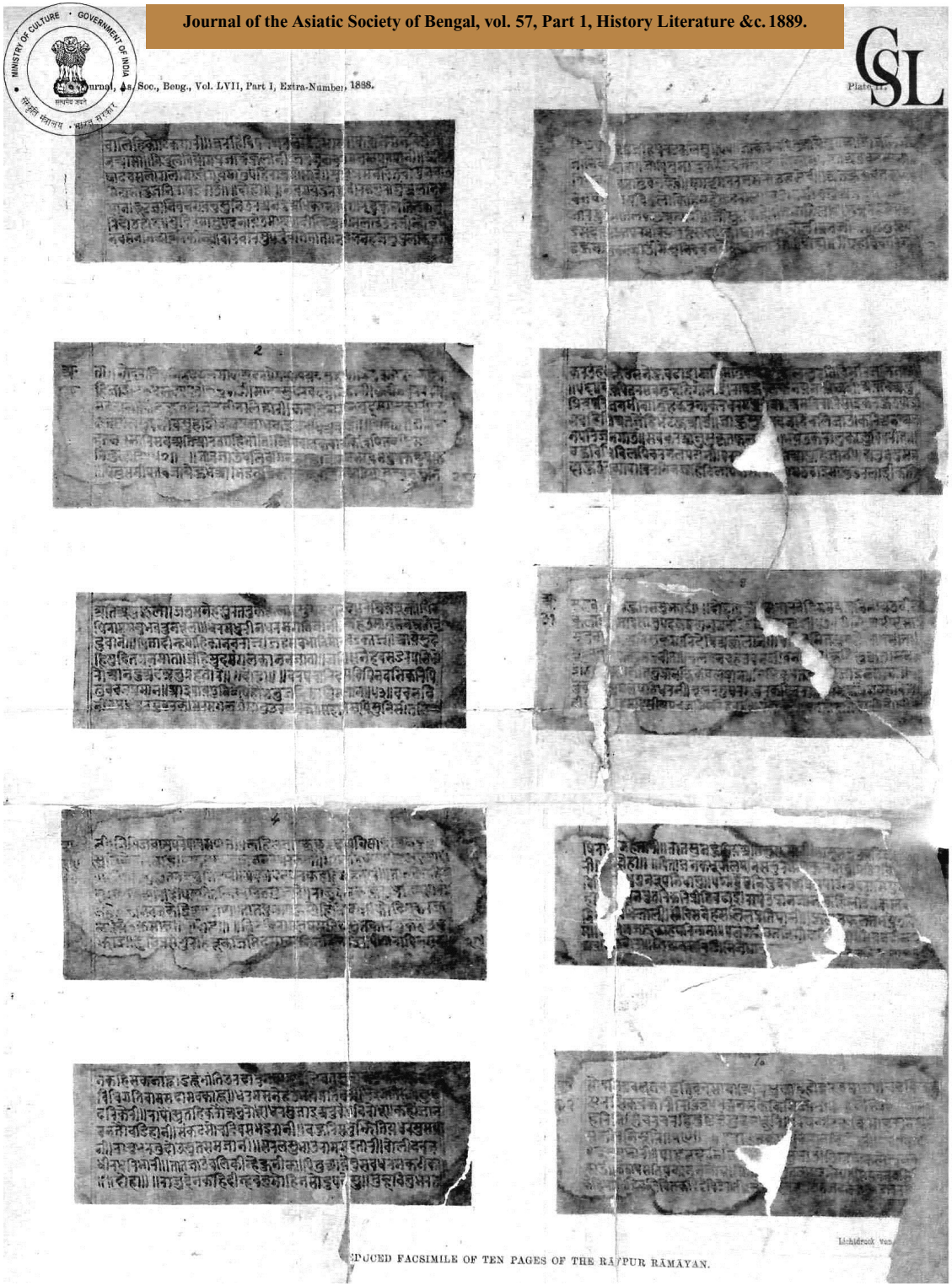

Plate II.

Lichtdruck von

DUCED FACSIMILE OF TEN PAGES OF THE RA PUR RAMAYAN.

Journal, As. Soc., Bengal, Vol. LVII, Pt. I, Extra-Number, 1888.

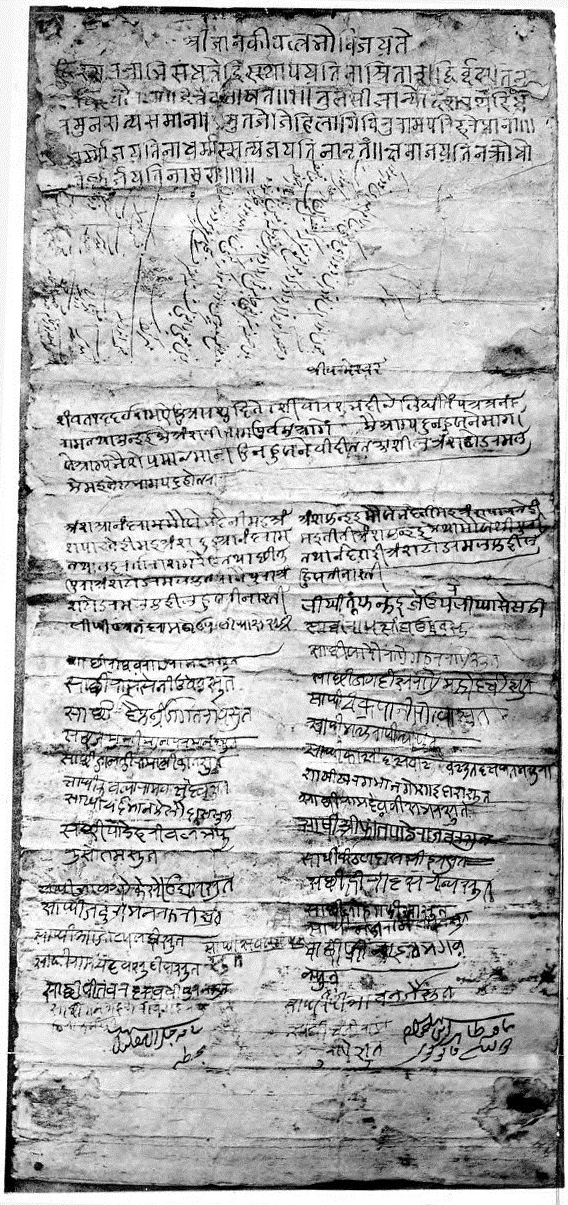

PHOTOGRAPH OF A DEED OF ARBITRATION IN THE HANDWRITING OF TUL'SĪ DĀS.

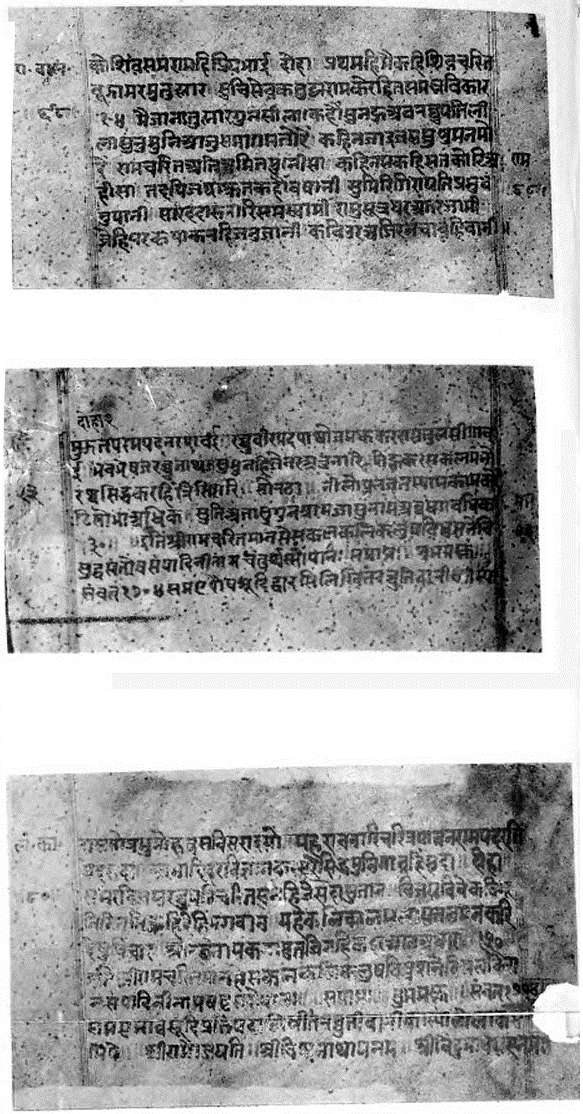

REDUCED FACSIMILE OF THREE PAGES OF THE BANĀRAS RĀMĀYAN.

Lichtdruck von Jaffé & Albert, Wien

बनारस की रामलीला का वृत्तान्त

(सन् 1828 ई. में प्रकाशित)

from a] GIGANTIC FIGURES OF WOOD AND LEATHER USED IN A CEYLON FESTIVAL.

Asiatic Journal Monthly Register
British India And Its Dependencies.
Vol Xxv, January To June, 1828
London, 1828 pp. 612-14

संस्कृत में बहुत सारे नाटक रामकथा के आधार पर लिखे गये हैं। वे सभी किसी न किसी खास अवसर पर मंचन के लिए ही लिखे गये थे। पर रामचरितमानस की रचना के बाद रामकथात्मक नाट्यशैली बदली हुई प्रतीत हो रही है। कहा जाता है कि तुलसीदास स्वयं रामलीला का मंचन कराते थे जिसमें वे अपने रचे गये पद, दोहा तथा चौपाई का गायन करते थे। कलकत्ता में दुर्गापूजा के दौरान 15 दिनों की रामलीला होती थी। बनारस में उसकी परम्परा आजतक विद्यमान है। यहाँ 1828ई. में रामलीला का वर्णन किया गया है। लेखक ने मुख्यतः बनारस की रामलीला का सूक्ष्मता से वर्णन किया है। उन्होंने इस बात पर जोर दिया है कि कलाकार पढ़े-लिखे नहीं हैं, वे केवल भड़कीले मुखौटे लगाकर अभिनय करते हैं। उसके दर्शक सभी लोग होते हैं। जब शोभायात्रा निकाली जाती है तो मुखौटे में छिपकर कई अंगरेज सिपाही भी घुस जाते हैं।

राम लीला

विष्णु के सातवें अवतार राम के इतिहास का नाटकीय प्रस्तुति हिंदू पंचांग में प्रमुख त्योहारों में से एक के रूप में जाना जाता है। यह उत्तरी भारत में दुर्गापूजा के मौसम और स्थलों पर आयोजित होता है। जिसे बंगाल में अतिभव्यता और विधानों के साथ मनाया जाता है। इससे नववर्ष आरम्भ होता है जो लगभग शरदकालीन विषुव के साथ साम्य रखता है। यह पंद्रह दिनों की अवधि की दुर्गापूजा की तरह भी है, जिसे बेंटले ने अग्रिम भोज सम्बन्धी पर्व (मकर संक्रान्ति) से सम्बन्धित माना है, जो प्रचलित पंचांग से विषुव के पंद्रह दिनों के विचलन होने के बाद पंचांग के किए गये सुधार के कारण उत्पन्न हुआ था।

हालाँकि, राम लीला का उत्सव दुर्गापूजा के समान किसी अति प्राचीनता का प्रदर्शन नहीं करता है। रामायण के भाषा संस्करण के कवि तुलसी दास बनारस के निकट पड़ोस में रहते थे और उन्होंने अपने काव्य की रचना 1574 ई में की थी। उनके द्वारा इस कार्य को एक लोकप्रिय रूप और भाषा देने की घटना से यह प्रतीत होता है कि उनके समय से पहले इसे (रामकथा को) संस्कृत में पढ़ने की प्रथा प्रचलित थी।

"इस कार्यक्रम का मुख्य अंश एक विशाल मैदान के बीच प्रदर्शन बाँस के बल्लों से घिरे एक सीमित क्षेत्र में होता है, जो रामलीला के अन्त होने तक चारों ओर से हिन्दुओं के सभी वर्गों के लोगों की भीड़ से घिरा होता है।"

किन्तु यह काव्य नाट्य-प्रदर्शन की शैली में नहीं लिखा गया है और बनारस में डेढ़ शताब्दी से पहले इस प्रस्तुति के प्रचलन का हमें कोई संकेत नहीं मिल रहा है।

नगर में पाँच-छह ऐसी अलग-अलग जगहें हैं, जो प्रति वर्ष इस मौसम में रामलीला के दृश्य बन जाते हैं। उनमें से अधिकांश स्थलों पर प्रदर्शनी संक्षिप्त और अपूर्ण होती है। अन्य कुछ स्थानों पर दशहरे के दिन रावण की विशाल मूर्ति के दहन से कुछ अच्छी रहती है। अनेक स्थानीय राजे-महाराजे इस रामलीला पर स्वेच्छानुसार व्यय करते हैं लेकिन रामनगर राज के काशीराज इसे पूर्ण विधान के साथ पूरा करते हैं। लगभग सम्पूर्ण रामायण क पारायण बीस या तीस दिनों में किया जाता है, और जो भी घटनाएँ अभिनय या प्रदर्शित करने योग्य होती हैं, उन्हें साथ-साथ प्रदर्शित भी किया जाता है।

पूरा प्रदर्शन मूक अभिनय के रूप होता है और अभिनेताओं की इतनी अधिक संख्या होती है और अपने कार्यों के प्रति वे इतने अकुशल होते हैं कि उनके सूत्रधार-गण जिन्हें हम मंच व्यवस्थापक कह सकते हैं वे गायक एवं वाद्य कलाकारों, रामायण पाठ करनेवाले पंडितों के साथ प्रस्तुति करनेवालों के बीच तालमेल बनाने में अत्यधिक परेशानी का अनुभव करते हैं। दृश्यों को यथासम्भव वास्तविक बनाया जाता है। उदाहरण के लिए यदि दृश्य में गंगा अथवा समुद्र की आवश्यकता है तो पूरा दृश्य किसी तालाब के किनारे स्थानान्तरित किया जाता है; रात्रिकालीन दृश्य को टॉर्च की रोशनी में प्रस्तुत किया जाता है। अलग-अलग बगीचों के नाम अयोध्या, जनकपुर, चित्रकूट और किष्किन्धा रख दिये गये हैं, जो इस काव्य के प्रमुख स्थल हैं।

रावण की राजधानी लंका के लिए मिट्टी और कागज से एक कृत्रिम किला बनाया गया है, जिसपर स्वर्ण की आभा दिखाने के लिए पीले रंग से रंग दिया जाता है औऱ इसके ठीक बीच में साठ या सत्तर फीट ऊँची रावण की प्रतिमा खड़ी की जाती है, जो सामान्यतः पटाखों और ज्वलनशील वस्तुओं से भरी होती है। इस कार्यक्रम का मुख्य अंश एक विशाल मैदान के बीच प्रदर्शन बाँस के बल्लों से घिरे एक सीमित क्षेत्र में होता है, जो रामलीला के अन्त होने तक चारों ओर से हिन्दुओं के सभी वर्गों के लोगों की भीड़ से घिरा होता है।

अब नाट्य-प्रस्तुति के पात्रों के बारे कुछ विवेचन करना शेष है। अभिनय के मामले में वे वस्तुतः कठपुतली की तरह होते हैं, पर उनके मुखौटे और परिधान बिल्कुल संगत होते हैं। राम, सीता और उनके भाई अति अलंकृत बालकों के द्वारा अभिनीत होते हैं और उनके चेहरे वस्तुतः चित्रकारी किये गये होते हैं। वे वास्तव में किसी धार्मिक पात्र की तरह पहनावों के साथ प्रवेश करते हैं। राम के द्वारा पहने जानेवाले मुकुट का पूजन तथा भोग-अर्पण किया जाता है। साथ ही यह पूजन और भोग-अर्पण उन बालकों का भी होता है, जो पूरे उत्सव के दौरान उन देव-विग्रहों के स्वरूप को निभाते हैं। ये बालक इस पूरे समारोह को गम्भीरता,

पवित्रता तथा धैर्यपूर्वक निभाते हैं, जो आश्चर्यजनक है। हालाँकि, एक अवसर पर, राजा के द्वारा फेंके गये मुट्ठी भर रुपये से भयानक रूप से भ्रम पैदा हो गया था, जब वे 'केक' के लिए विद्यार्थियों की तरह, या अमृत के लिए देवता की तरह छटपटा रहे थे। रावण, हनुमान आदि मुखौटा लगे पुरुषों के द्वारा अभिनीत होते हैं और राक्षस और दैत्य टोकरी बुननेवाली कला तथा कागज से बनाये जाते हैं, जो अपने हथियारों के साथ भयानक होते हैं। चट्टानों, पक्षियों और अन्य साज-सामान को लगभग उसी तरह प्रबन्धित किया जाता है; जैसे यूरोप में किये जानेवाले मूक-प्रदर्शन में होते हैं और एक स्थल पर जहाँ राम शिला के रूप में परिवर्तित गौतम ऋषि की पत्नी के जीवन को पुनः प्रकट कराते हैं, वहाँ हमने जेल के दरबाजे की प्रतिकृति देखी जो धरती में एक छिद्र की तरह थी, जिससे वह बाहर निकली।

रामनगर में यह लीला बालकाण्ड से आरम्भ होती है जिसमें रावण और उनके भाइयों का प्रारम्भिक इतिहास वर्णित है। ब्रह्मा (जो हंस पर सवार होकर प्रकट होते हैं) के द्वारा दिया गया वरदान कि यह केवल मनुष्य के हाथों मारा जाएगा, उसका विवाह, देवता और ब्राह्मणों का उसके द्वारा किया गया अपमान; एक सरोवर के तल पर शेष की शय्या पर शयन कर रहे विष्णु को जगाने के लिए देवताओं सहित पृथ्वी के द्वारा एक गाय के रूप में रात्रिकालीन शोभा-यात्रा का अभिनय किया जाता है।

इसके बाद राम का जन्म और बाल्यकाल की प्रस्तुति की जाती है। विश्वामित्र के पास जाना और उसके बाद राजा जनक के दरबार में जाना, जहाँ उनका विवाह होता है, इस अभिनय का सबसे आनन्ददायक अंश है। प्रातःकाल स्नान करने और फूल बटोरने के उद्देश्य से राम जनक के उद्यान का अन्वेषण करते हैं; कुछ दूरी पर अपनी सहेलियों के बीच घिरी हुई सीता देवी के मन्दिर की ओर जाती दिखाई देती है, जहाँ वह अति स्वाभाविक प्रार्थना करती है कि जिस नायक को उसने अभी अभी देखा है, वह उसका पति बने। राम प्रेम से विचलित होकर विश्वामित्र के पास लौटते हैं और शाम को उन्हें चन्द्रमा को देखकर सीता का भ्रम होता है पर इस परिवर्तन के भ्रम से मुक्त हो जाते हैं।

अगले दिन राजा जनक के महल में प्रमुखों और विवाह के इच्छुक राजकुमारों की भव्य सभा आयोजित होती है जो इवानहो [1] के लेखक द्वारा किए गये वर्णन के समान है। राम के सौन्दर्य से उत्पन्न अनुभूति, सभी विवाह के इच्छुक राजकुमारों के सामने विदूष के द्वारा सीता के गुणों का वर्णन, दिव्य धनुष पर प्रत्यंचा चढाने का उनका असफल प्रयास, राम के द्वारा प्रयास करने से पहले ही मनुहार करते समय उनका मर्यादा, उनकी सफलता पर वाद्यों की गड़गड़ाहट, और लज्जा करती हुई सीता के द्वारा जयमाल पहनाना- ये सब इस काव्य कि नाट्य प्रस्तुति की घटनाएँ हैं, जो भलीभाँति दर्शाये जाते हैं।

बनारस नगर में बालकांड के प्रसंग को छोड़ दिया जाता है और शपथ पूरा करने के लिए राजा दशरथ के द्वारा भरत के लिए सिंहासन के परित्याग, राम के चौदह वर्ष के वनवास से यह आरम्भ होता है। पहला दृश्य मंदाकिनी सरोवर के बगल में स्थित सुंदरदास बाग में स्थापित होता है, जहाँ से शोभायात्रा निकलकर गलियों से गुजरती हुई ईश्वरगंगी सरोवर और चित्रकूट तक जाती है। सामान्यतः यह टिप्पणी की जा सकती है कि शोभायात्रा और लड़ाई का जुलूस किसी नगर में सार्वजनिक प्रदर्शन के लिए विशेष रूप से अनुकूल होते हैं; जबकि नाट्य प्रस्तुति का वाचन और उसका विस्तृत वर्णन मनोरंजन के लिए एकत्र विभिन्न व्यापारियों और ब्राह्मणों के उद्यानों में सीमित दर्शकों के

1. वाल्टर स्कॉट का प्रसिद्ध उपन्यास Ivanhoe: A Romance का यहाँ उल्लेख है। इसका प्रकाशन 1819 ई. में हुआ था।

सामने आयोजित किये जाते है। अयोध्याकांड के वाचन के लिए चित्रकूट में दो या तीन दिनों तक व्यतीत होता है, जहाँ दशरथ की मृत्यु का समाचार नाटकीय रूप से प्रदर्शित किया जाता है। साथ ही, राम को वन से लौटाने के लिए भरत की विनती, गुह के साथ मिलन, वनवासी, जनक एवं कुछ ऋषि-मुनियों के साथ और विशेष रूप से मौलिक रामायण के कवि वाल्मीकि के साथ यात्रा होती है।

अयोध्याकांड का समाप्ति के बाद का अंश और अधिक जीवंत हो जाता है। हर दिन किसी राक्षस, या दैत्य के साथ कोई न कोई संघर्ष किसी पारम्परिक स्थान पर होता है। इस प्रकार, 'धूलिया राक्षस' के साथ युद्ध का प्रदर्शन 'रामचंद बाग' के पास और 'खर-दूषण लड़ाई' त्रिलोचन में होता है। इसके आगे, नगर में रावण की बहन शूर्पणखा के पीछे-पीछे चलनेवाले राक्षसों की एक शोभा-यात्रा के रूप में प्रदर्शित होता है, जो शूर्पणखा प्रतिशोध की प्रतिज्ञा करती है, क्योंकि राम या लक्ष्मण में से किसी ने उसके सौन्दर्य की सराहना नहीं की है। इस शोभायात्रा में कोई भी व्यक्ति मुखौटा लगाकर सम्मिलित हो सकता है और इस वर्ष बहुत संख्या में जैकेटवाले साहिब भी सफेद चेहरावाले मुखौटा लगाये देखे गये हैं। मैं निश्चय नहीं कर पा रहा हूँ कि वे क्या रावण के सहयोगी राक्षसों की मेजवानी करनेवाले के रूप में या केवल छद्मवेष धारण करने के नमूना के तौर पर सम्मिलित हुए हैं? इसी प्रकार की कुछ बातें हम कलकत्ता में दुर्गापूजा के दौरान भी पाते हैं। इन सभी मेजवानों का वध शीघ्र ही राम के द्वारा किया जाता है। अगला प्रदर्शन रावण के उस विमान का होता है, जिससे सीता का अपहरण हुआ था। हिरण की आकृति में मारीच राम और लक्ष्मण को दूर ले जाता है और उसी समय रावण एक साधु के वेष में सीता की रक्षा के लिए खींची गयी चमत्कारपूर्ण रेखा से बाहर आने के लिए फुसलाता है। एक लंबे हाथोंवाला

"इस शोभायात्रा में कोई भी व्यक्ति मुखौटा लगाकर सम्मिलित हो सकता है और इस वर्ष बहुत संख्या में जैकेटवाले साहिब भी सफेद चेहरावाले मुखौटा लगाये देखे गये हैं। मैं निश्चय नहीं कर पा रहा हूँ कि वे क्या रावण के सहयोगी राक्षसों की मेजवानी करनेवाले के रूप में या केवल छद्मवेष धारण करने के नमूना के तौर पर सम्मिलित हुए हैं?"

राक्षस और एक गृद्ध या अज्ञात पक्षी का वध होता है।

राम, अपनी पत्नी के वियोग की निराशा में किष्किन्धा के लिए आगे बढ़ते हैं, जहाँ वे एक वानर प्रमुख सुग्रीव के साथ मैत्री करते हैं और अपने भाई बाली के साथ युद्ध करने में उसकी सहायता करते हैं। इसी स्थल पर हनुमान पहली बार मंच पर उपस्थित होते हैं और इसके बाद वे सीता का अन्वेषण एवं लंका में उनके साथ वार्तालाप में अपनी प्रमुख भूमिका निभाते हैं। वे अपनीं पूँछ की आग से लंका जलाते हैं; रामकथा की नायिका सीता के प्रति भक्ति की शपथ खाकर उनकी वापसी होती है; वे सुग्रीव के बाग को उजाड़ते हैं और अन्त में बंदरों की उनकी सेना के द्वारा समुद्र को पार करने के लिए चट्टानों से पुल तैयार करते हैं और व्यक्तिगत रूप से रावण का मुकाबला करते हैं।

अन्तिम युद्ध जिसमें रावण मारा जाता है दशहरा या दसवें दिन होता है। यह रामनगर में इस मेले का प्रमुख दिन है जो देखने लायक है। सन्ध्या के समय बनारस के राजा, तोपों की सलामी के साथ अपने महल के द्वार से पूरे जुलूस में निकलते हैं; उनके राजकीय हाथियों के आगे बैनर, संगीत, साज-सज्जा

और सैनिक जहाँ तक नजर जा सकती है, लगे होते हैं। रास्ते में राजा आनेवाले वर्ष में सुख-शान्ति-समृद्धि के लिए शमी वृक्ष पर पुष्प, अक्षत और नारियल चढाने के पारम्परिक विधान के लिए रुकते हैं। जब उनकी शानदार शोभायात्रा मैदान पर पहुँचती है, तो उनके हाथी मनुष्य के शिरों के समुद्र में तैरते हुए प्रतीत होते हैं, साथ ही, उनकी समृद्ध साज-सज्जा इस दृश्य की चमक को और बढ़ा देती है। दायीं और बायीं ओर शत्रुसेना के प्रमुखों के शिविर दिखायी पड़ते हैं; फाटकों की रखवाली करनेवाले दिग्गजों के साथ पीछे की ओर लंका का किला रहता है। सीधे सामने, एक बगीचे के मंडप, या चबूतरा पर, भयानक राक्षसों द्वारा संरक्षित दुबली-पतली सीता विराजमान होती हैं। प्रदर्शन करनेवाले कलाकार और वाद्ययंत्रवाले बीच में घिरे हुए स्थान पर होते हैं। राम और रावन अपने ऊँचे रथों पर एक दूसरे पर बाण छोड़ते हुए दिखाई दे रहे हैं, जबकि हनुमानों के दल कई गुना हो गये हैं। कई रावण तथा छोटे-छोटे मायावी राक्षसगण हाथों में टॉर्च लेकर नीचे असमानता केसाथ लड़ रहे होते हैं। दो ऊँचे मंचों पर खड़े देवता कभी-कभी समवेत स्वर में तालियाँ बजाते हैं और कभी-कभी रावण द्वारा स्वर्ग से भी खदेड़ दिए जाते हैं। जब अन्त में रावण गिर जाता है तो पूरी भीड़ अपने हाथों से ताली बजाती है और चिल्लाती है और लंका से आतिशबाजी छूटती है और बीच में विशाल आकृति में विस्फोट के साथ दिन समाप्त होता है।

अगले दिन दोपहर में एक और प्रदर्शन समान या उससे भी अधिक आकर्षक प्रकृति का होता है। इसका नाम भरत मेलाव है अथवा इसे राम, लक्ष्मण और सीते के लंका लौटना भी कहते हैं। सभी भाइयों और उनके प्रमुख सहयोगियों को एक बड़े सिंहासन पर नगर में शोभायात्रा के रूप में घुमाया जाता है, जैसा कि अंग्रेजी चुनाव में इस्तेमाल किया जाता है। कुल मिलाकर इसमें अपार भीड़ होती है, परिधानों की चमक तथा विविधता दिखाई देती है, मँहगे गहने, बच्चों का सौन्दर्य, इस पवित्र झुंड पर फूलों और पुष्पमालाओं की वर्षा करते हुए लोगों की प्रसन्नता और दृढ़ भाव-भंगिमाएँ, संध्याकालीन निरभ्र आकाश की रमणीय विस्तार और बागों में गिरे पत्तों की मर्मर ध्वनि के साथ एक चित्र को पूर्ण करते है, जिसका कोई वर्णन उसके साथ न्याय नहीं कर पायेगा और जो एक अंग्रेजी कल्पना के लिए सबसे अच्छा बोधगम्य होगा और वास्तव में 'पूर्वदेश की लीला' के शीर्षक के अन्तर्गत लिखा जायेगा।

***

उड़ीसा का पाण्डुलिपि में चित्रित हनुमान-संजीवनी ले जाते हुए।

'हनुमद्-दीक्षा' : प्रसिद्ध हनुमान-चालीसा अनुष्ठान

श्री अंकुर नागपाल
शोधछात्र, विशिष्टाद्वैत वेदान्त, श्रीलाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय।

रामोपासना के सन्दर्भ में कहा गया है कि जो लोग इस संसार में सुख-शान्ति-समृद्धि चाहते हैं, उनके लिए हनुमानजी की उपासना पर्याप्त है। सम्पूर्ण भारत में हनुमान की उपासना के लिए हनुमान-चालीसा सबसे प्रख्यात स्तोत्र है, जो अपनी सरलता के कारण सर्वसुलभ है। न केवल उत्तर भारत में अपितु दक्षिण भारत में भी हनुमान-चालीसा का अनुष्ठान कई रूपों में किया जाता है। इसके अनुष्ठान में न तो अशुद्ध उच्चारण का कोई भय होता है, नही विशालता के काऱण समय की बाध्यता।

समाज के सभी वर्ग के लोग चाहे वे शिक्षित हों या अशिक्षित, इसका अनुष्ठान करते हैं। उत्तर भारत में खोई हुई वस्तु की प्राप्ति, खोए हुए परिजन की सुरक्षित वापसी, लौकिक बन्धन से मुक्ति, शत्रुभय से मुक्ति आदि के लिए हनुमान-चालीसा का अनुष्ठान सर्वविदित है। यहाँ दक्षिण भारत में प्रचलित हनुमदुपासना की विख्यात विधि का वर्णन किया गया है।

संस्कृत से अनभिज्ञ दाक्षिणात्य भक्तों के लिए क्षेत्रीय विद्वानों ने, शबरीमलय के भगवान् हरिहरपुत्र (अय्यपस्वामी) के व्रत के ही तुल्य, कुछ दशक पूर्व एक लौकिक उपासना-विधि बनाई; जिसको 'हनुमान-दीक्षा' (अथवा 'हनुमद्दीक्षा' या 'हनुमन्माला') नाम दिया गया। यहाँ 'दीक्षा' शब्द का तात्पर्य गुरुमुख से परम्परागत मन्त्रोपदेश नहीं, अपितु व्रत या संयम है।

अभिप्राय यह है कि किसी पात्र-विशेष (भक्त) का, किसी काल एवं देश में सीमित रहते हुए, भगवान् श्रीहनुमानजी की उपासना-नियमों में दृढतापूर्वक संयमित हो जाना हनुमद्-दीक्षा है। बहुत खोजने पर भी हमें इसकी कोई सुव्यवस्थित लिखित विधि सुलभ न हो सकी। कारण कि जिन्होंने इसका अनुष्ठान किया, वे लोग प्रायः किसी प्राचीन देवालय में जाकर या अपने वृद्ध-जनों के निर्देशानुसार यथायोग्य पूजन-आदि द्वारा इसमें दीक्षित हुए।

अतः सभी हनुमत्प्रेमी साधकों की सुविधा हेतु विभिन्न सूत्रों से प्राप्त विवरण को हम प्रस्तुत निबन्ध में संकलित कर रहे हैं। आशा है कि पाठकगण इस विधि का लाभ लेते हुए श्रीहनुमानजी के कृपापात्र बनेंगे तथा हमें भी श्रीहनुमानजी एवं उनके भक्तों का आशीर्वाद प्राप्त होता रहेगा।

आरम्भ करने की तिथि

दक्षिण भारत में किसी एक उपासना-विशेष की

सामूहिक हनुमद्-दीक्षा का दृश्य

दीक्षा (नियम) को 41 दिनों तक धारण करना 'पूर्णमण्डल' कहलाता है। जबकि 21 या 11 दिनों की दीक्षाएँ क्रमशः 'अर्धमण्डल' अथवा 'पादमण्डल' कहलाती हैं। दक्षिण भारत में प्रायः लोग अपनी दीक्षा को हनुमान-जयन्तीवाले दिन पूर्ण करते हैं; अर्थात् हनुमान-जयन्ती से 11, 21 अथवा 41 दिनों पूर्व इस व्रत का आरम्भ करना चाहिए। हालाँकि निष्काम अथवा आर्त्त (विपत्तिग्रस्त) भक्त किसी भी काल में इसको आरम्भ कर सकते हैं।

अधिकारी

सभी वर्ण-जाति-आदि के श्रद्धालु स्त्री-पुरुष इस दीक्षा के अधिकारी हैं।

परिधान (पहनावा)

इस दीक्षा में उन्हें सदैव भगवा रंग के भारतीय परिधान (अर्थात् पुरुषों के लिए उत्तरीय या कुर्ता एवं धोती या पजामा … जबकि स्त्रियों के लिए सूट अथवा साड़ी) ही धारण करने होंगे; कोई अन्य वस्त्र नहीं। यदि सम्पूर्ण भगवा वस्त्र न धारण कर सकें, तो श्वेत वस्त्रों के साथ भगवा अंगवस्त्र (अंगोछा या दुपट्टा) ले सकते हैं। अपने लिए वस्त्रों की दो जोड़ी का प्रबन्ध करें; ताकि पाठ करने के लिए प्रत्येक बैठक में स्नान करके धुले हुए वस्त्रों को पहना जा सके। किन्तु ध्यान रहे; अपने वस्त्रों को स्वयं धोना होगा।

वर्जनाएँ

दीक्षारम्भ के तीन दिन पूर्व ही मद्य, मांस, तम्बाकू, लहसुन, प्याज़, उड़द आदि सभी अभक्ष्य पदार्थ, पान या तले-भुने मसालेदार गरिष्ठ भोजन एवं मैथुन का त्याग कर दें। हनुमानजी की उपासना में ब्रह्मचर्य अर्थात् सभी प्रकार की मैथुन-क्रियाओं का पूर्ण त्याग अत्यन्त आवश्यक है। दीक्षाकाल में बाल या नाखून काटना वर्जित है। कुछ साधक तो दीक्षाकाल में चप्पल तथा तेल, साबुन, शैम्पू आदि सज्जा पदार्थों का भी परित्याग कर देते हैं; किन्तु यह वैकल्पिक है।

दीक्षारम्भ के दिन का कर्तव्य

दीक्षारम्भवाले दिन ब्रह्ममुहूर्त में उठकर स्नान-नित्यकर्म-आदि को सम्पादित करें तथा उन शुद्ध वस्त्रों को धारण करके निराहार रहते हुए सूर्योदय के एक मुहूर्त अर्थात् 48 मिनटों के भीतर किसी हनुमान-मन्दिर में दर्शन करें। सिन्दूर से रंगा हुआ एक पाँच गाँठवाला श्वेत, सूती रक्षासूत्र एवं गले में पहनने हेतु एक तुलसी या रुद्राक्ष की माला श्रीहनुमानजी के चरणों में रखवाकर विद्वान् पुजारी के माध्यम से श्रीहनुमानजी का यथायोग्य पूजन करवाएँ तथा श्रीहनुमानजी को पुष्पमाला, नारियल, केला (या कोई अन्य ऋतुफल), गुड़, भुना चना, तुलसीदल आदि श्रद्धापूर्वक समर्पित करें। ध्यान रहे; शुद्धि-अशुद्धि का विचार करते हुए दुकान-आदि की मिठाईयों का प्रयोग न करना ही उचित होगा। जितना समय पुजारीजी श्रीहनुमानजी का पूजन करें, उतने समय तक स्वयं अथवा उपस्थित अन्य भक्तों के साथ ताली बजाकर श्रीहनुमानजी को विजयमन्त्र ('श्रीराम जय राम जय जय राम') का संकीर्तन सुनाएँ। पूजन समाप्त हो जाने पर पुजारी से अपने दाहिने हाथ में उस रक्षासूत्र को बँधवा लें और कण्ठ में तुलसी/रुद्राक्ष की माला को धारण कर लें। कुछ लोग अपनी मालाओं में श्रीहनुमानजी का चित्र या यन्त्र लगा लेते हैं, किन्तु यह बात जँचती नहीं। कारण कि धारण-यन्त्रों का निर्माण गुरुजनों द्वारा जब सिद्ध मुहूर्तों में विशिष्ट प्रक्रियाओं से होता है, तभी वे फलीभूत होते हैं; अन्यथा नहीं। वहीं; कण्ठ में धारण की जाने वाली माला में चित्र -आदि (प्लास्टिक लॉकेट) बाँध लेना स्वयमेव शास्त्रविरुद्ध है। कण्ठ की माला पर जप करना वर्जित है। शौच या शयन के समय अपने कण्ठ की माला को उतार देना चाहिए। शयन के बाद पूर्ण स्नान तथा शौच करने पर अर्धस्नान (अर्थात् कमर से नीचे तक स्नान) करके ही माला को पुनः धारण करना चाहिए। माताएँ सुविधानुसार सप्ताह में एक या दो बाहर केशस्नान कर सकतीं हैं।

फिर पूजन एवं कर्पूर-आरती के सम्पन्न हो जाने पर साष्टांग प्रणाम करके श्रीहनुमानजी से अपनी हनुमद्दीक्षा का आरम्भ करने की आज्ञा लें। माताएँ खड़े-खड़े ही प्रणाम करें, उनके लिए साष्टांग प्रणाम करना वर्जित है।

तदुपरान्त श्रीहनुमानजी को हनुमान-चालीसाका एक पाठ सुनाएँ और पुनः साष्टांग प्रणाम करके विजयमन्त्र का संकीर्तन करते हुए उनकी पाँच बार प्रदक्षिणा करें।

अपने घर लौटने पर कर्तव्य

फिर लौटकर अपने घर के मन्दिर में लाल कम्बल के आसन पर बैठकर श्रीहनुमानजी के चित्रपट या छोटी मूर्ति के समीप गाय के घी या तिल के तेल का दीपक जलाएँ। कुछ लोग एक-साथ दोनों दीपक जलाते हैं। उन्हें घी का दीपक अपने बाईं ओर तथा तेल का दीपक अपने दाईं ओर रखना चाहिए। धूप, दीप, पुष्प, आरती, नैवेद्य द्वारा श्रीहनुमानजी का भक्तिपूर्वक पूजन करें। गुड़ और भुना चना हनुमानजी का प्रिय नैवेद्य (भोग) है; जिसमें तुलसीदल रखना अनिवार्य है। श्रीहनुमानजी महाराज श्रीरामकथा के रसिक श्रोता हैं, अतः कुछ लोग प्रतिदिन उन्हें रामायण का पाठ सुनाते हैं।

समय का संकोच होने से प्रातःकाल उन्हें 'नाम-रामायण' (लक्ष्मणाचार्य-कृत), 'मूल-रामायण' (वाल्मीकीय- रामायण- प्रथम सर्ग) या 'भुशुण्डी- रामायण' (रामचरितमानस 7.63क- 68क) का संक्षिप्त रामायण-पाठ सुनाया जा सकता है।

किन्तु जिन लोगों को पर्याप्त अवकाश प्राप्त हो, वे प्रातःकाल श्रीहनुमानजी को श्रीरामचरितमानस सुनाएँ।

यदि 11 दिन की दीक्षा हो, तो पहले दिन 92 दोहे तदुपरान्त प्रतिदिन 99 दोहा का पाठ करें।

21 दिनों की दीक्षा में पहले 20 दिनों तक 51 तथा

अन्तिम दिन 62 दोहों का पाठ करना चाहिए।

जबकि 41 दिनों के व्रत में 40 दिनों तक प्रतिदिन 26 दोहों का तथा अन्तिम दिन 42 दोहों का पाठ करके श्रीहनुमानजी को सुनाना चाहिए।

यदि आप उक्त दोनों उपायों में असमर्थ हैं, तो केवल विजयमन्त्र का 108 या 1008 बार संकीर्तन सुनाना भी अच्छा रहेगा। किन्तु उक्त तीनों में से कोई एक ही नियम लेना चाहिए; जिसका पालन सम्पूर्ण दीक्षावधि में हो सके। व्यक्तिगत रूप से हमें 'नाम-रामायण' का नियम अत्यन्त रुचिकर एवं सुविधाजनक लगता है। फिर पुनः साष्टांग प्रणाम करके आप श्रीहनुमानजी का प्रसाद लेकर अपने विद्यालय-कार्यालय-आदि दैनिक कार्यों में संलग्न हो सकते हैं।

व्रत के दिनों का भोजन

प्रातःकाल अल्पाहार में दूध एवं फल ग्रहण करें तथा सूर्यास्त से पहले 24 घण्टों में केवल एक बार पूरा भोजन करें। यदि अपने विद्यालय, कार्यालय आदि के दायित्वों से निकाल पाना असम्भव हो, तो भूख लगने पर फल एवं दूध से ही काम चलाएँ; किन्तु बाज़ार के व्यंजनों का सेवन कदापि न करें। साधक पूरे दीक्षाकाल में पूर्ण सात्त्विक भोजन ग्रहण करे। वहाँ भी स्वयंपाकी हो जाना (—अपना भोजन स्वयं बनाना) सर्वोत्तम है। जल, फल, मूल, दूध, हविः एवं औषधि के सेवन से व्रत में बाधा नहीं होती। खीर, सत्तू, जौ, शाक (जैसे तोरई, ककड़ी, मेथी आदि), गाय का दूध, दही, घी, गुड़, भुना चना, आम, अनार, नारंगी और केला — ये सर्वथा प्रशस्त भोज्य पदार्थ हैं। अतः साधक को चाहिए कि वह केवल उपर्युक्त प्रशस्त पदार्थों का भक्षण करते हुए अपनी दीक्षा को पूर्ण करे। बाजार में निर्मित अथवा किसी रजस्वला महिला के द्वारा निर्मित व्यंजनों का सेवन न करे; क्योंकि शास्त्र ऐसे व्यंजनों को प्रशस्त नहीं मानते। हो सके, तो पत्तल में भोजन करें; अथवा अपने पात्रों को स्वयं ही धोए।

सायंकाल अपने दायित्वों को पूर्ण करके घर लौटने पर पुनः पूर्ण स्नान करे। रात्रि नौ बजे तक धुले वस्त्रों को पहनकर अपने घर के पृथक् कक्ष या मन्दिर में उपस्थित हो जाए, अपने मस्तक पर तिलक लगाए तथा प्रातःकाल के ही समान श्रीहनुमानजी का आरती-पूजन करे। फिर एक ही बैठक में श्रीहनुमानजी को हनुमान-चालीसाके 108 पाठ श्रद्धापूर्वक सुनाए।

इस पूरी प्रक्रिया में लगभग तीन घण्टे का समय लगना अनुमानित है। बीच में शौच का वेग होने पर मौन रहकर निवृत्त होने हेतु उठ सकते हैं। तब अर्धस्नान तथा तीन बार आचमन करके अवशिष्ट पाठ को पूर्ण करना चाहिए। तत्पश्चात् विजयमन्त्र का कीर्तन करते-करते प्रभु को तीन बार साष्टांग प्रणाम करें। इस प्रकार; पूजा-पाठ-आदि पूर्ण हो जाने पर, यदि सूर्यास्त से पहले पूरा भोजन न किया हो, तो पूरा भोजन किया जा सकता है।

"...जो लोग इतना सब करने में असमर्थ हैं, वे श्रद्धाभाव से किसी हनुमान मन्दिर में जाकर 11, 21 अथवा 41 दिनों तक प्रतिदिन एक बैठक में हनुमान-चालीसाके 27 अथवा 108 पाठ रोज़ करें और यदि सम्भव हो; तो केला, गुड़ एवं चना का भोग समर्पित करें। सत्यभाषण, ब्रह्मचर्य, सात्त्विक भोजन एवं रामनामनिष्ठा — इतने से ही श्रीहनुमानजी प्रसन्न होकर बड़े-बड़े कार्य सिद्ध कर देते हैं।"

साधक को भूमि पर शयन करना चाहिए। यदि रोगवश भूशयन सम्भव न हो सके, तो साधक अपनी शय्या पर अकेले शयन करे। यह तपोमय दिनचर्या 41 दिनों तक रहेगी।

समापन के दिन का कर्तव्य

हनुमानजयन्ती अथवा दीक्षा के समापन दिवस पर जिस देवालय में जाकर दीक्षारम्भ के समय श्रीहनुमानजी का पुजारी से पूजन करवाया था, उसीमें पुनः जाकर दर्शन करें तथा अपनी श्रद्धा-सामर्थ्य-अनुसार पुनः भोग-आरती-पूजन, तुलसीदल से शतार्चन, दुग्धाभिषेक या चोला आदि करवाकर भक्तिपूर्वक प्रभु के श्रीचरणों में अपने सम्पूर्ण हनुमद्दीक्षा को समर्पित करके उनसे उनकी कृपा की याचना करें। यद्यपि सकाम साधक के लिए प्रभु का द्वार बन्द नहीं है, तथापि माँगनेवाला दो हाथों से माँगता है; और देनेवाले के असंख्य हाथ हैं। अतः सबकुछ उन्हीं पर छोड़कर पूर्णतः उनके शरणागत हो जाना चाहिए। हो सके, तो हनुमद्दीक्षा पर भण्डारा करना चाहिए; अथवा न्यूनतम एक ब्राह्मण को भोजन करवाना चाहिए।

दीक्षारम्भवाले दिन दाहिने हाथ में बाँधे गए रक्षासूत्र को उतारकर किसी वट या अश्वत्थ वृक्ष की जड़ में समर्पित करना चाहिए। दीक्षाकाल में पहने वस्त्रों एवं माला को अपने अग्रिम दीक्षा के लिए सुरक्षित रखे जा सकते हैं। किन्तु अपने माला, आसन, वस्त्र आदि को किसी अन्य व्यक्ति के प्रयोग हेतु नहीं देना चाहिए। दीक्षाकाल में मोबाइल-आदि यन्त्रों का प्रयोग सीमित करें, क्रोध-लोभ-मोह-राग-द्वेष-आदि दुर्गुणों एवं लोगों के अनावश्यक स्पर्श या वार्ताओं से बचें। कितनी भी विकट परिस्थिति क्यों न आ जाए, पाठ न छोड़ें! आराध्यदेव साधक की निष्ठा का परीक्षण करने के लिए यदा-कदा विकट परिस्थितियों को प्रकट करते हैं। उस समय उन्हीं के विश्वास-बल पर डटे रहना चाहिए। चाहे कोई भी स्त्री या पुरुष हो, सभी को 'श्रीराम' कहकर सम्बोधित करना चाहिए; न कि नाम या सम्बन्धसूचक शब्दों के द्वारा।

परम्परागत यज्ञोपवीती द्विजों को अपने सन्ध्यावन्दन-आदि नित्यकर्मों का लोप नहीं करना चाहिए। सूतक की परिस्थिति आ जाने पर हनुमानजी के समक्ष आसन पर बैठकर पूजन-आरती-आदि न करें, किन्तु अन्यत्र एकान्त में बैठकर हनुमान-चालीसा के मानसिक पाठ अवश्य कर लेने चाहिए। बन्दरों के प्रति विशेष प्रेमभाव रखना चाहिए तथा उन्हें यथाशक्ति भोजन-प्रसाद देना चाहिए। ध्यान रहे; वास्तविक लक्ष्य है — हनुमान-चालीसाके प्रतिदिन 108 पाठ प्रतिदिन अर्थात् एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक। यदि कोई नियम इस लक्ष्य का बाधक बने, तो उस नियम को यथाशीघ्र शिथिल कर देना चाहिए।

तो कुछ इस प्रकार; दक्षिण भारत में लोग हनुमद्दीक्षा का अनुष्ठान करते हैं। यह प्रेरणास्पद समाचार है कि ऑस्कर पुरस्कार जीतनेवाले दक्षिण-भारतीय अभिनेता जूनियर एन.टी.आर ने भी विगत वर्ष अपनी फ़िल्म 'आर.आर.आर.' के लिए हनुमद्दीक्षा का

अर्धमण्डल अनुष्ठान किया था; जिससे उन्हें अपार सफलता मिली।

हमें विभिन्न सूत्रों से जैसी विधि ज्ञात हुई, उसको यहाँ यथामति संकलित एवं प्रस्तुत कर दिया है। जो लोग इतना सब करने में असमर्थ हैं, वे श्रद्धाभाव से किसी हनुमान मन्दिर में जाकर 11, 21 अथवा 41 दिनों तक प्रतिदिन एक बैठक में हनुमान-चालीसाके 27 अथवा 108 पाठ रोज़ करें और यदि सम्भव हो; तो केला, गुड़ एवं चना का भोग समर्पित करें। सत्यभाषण, ब्रह्मचर्य, सात्त्विक भोजन एवं रामनामनिष्ठा — इतने से ही श्रीहनुमानजी प्रसन्न होकर बड़े-बड़े कार्य सिद्ध कर देते हैं।

हम तो कलिपावनावतार गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी के प्रति श्रद्धावनत हैं; जिनकी कृति दक्षिण भारत में बहुमानित है। उन तत्त्वदर्शी महापुरुष ने हनुमान-चालीसाके रूप में एक ऐसी साधना-प्रणाली प्रदान कर दी है; जिसका उपयोग एक वैदिक द्विज से लेकर आदिवासी तक— सभी आस्तिक हिन्दुजन कर सकते हैं।

स्कूल के विद्यार्थियों को चाहिए कि वे सामान्य दिनों में प्रतिदिन न्यूनतम 7 बार तथा गर्मियों की छुट्टियों में प्रतिदिन 27 या 108 बार हनुमानचालीसा का पाठ करें। सनातन धर्म के प्रति श्रद्धालु विद्यालयों की प्रातःकालिक प्रार्थना के रूप में हनुमान-चालीसा का ग्रहण होना चाहिए। हमने सुना है कि नर्मदा-परिक्रमा करनेवाले अनेक साधक सायंकाल हनुमान-चालीसाके 108 पाठ करते हैं; जिससे उन्हें विशिष्ट आध्यात्मिक अनुभव होते हैं।

हमें लगता है कि हिन्दु-संगठनों को आदिवासी क्षेत्रों में जाकर इन दीक्षाओं का आयोजन करना चाहिए; ताकि उन वनवासी बन्धुओं का भी श्रीहनुमानजी से परिचय दृढ हो। वस्तुतः रुद्रावतार श्रीहनुमानजी महाराज इस धराधाम पर विद्यमान हैं तथा साधक पर अनुग्रह करने के लिए स्मरणमात्र पर सूक्ष्मतः उपस्थित हो जाते हैं। फिर जो साधक अपनी साधना को समृद्ध करता है, उसे अपने आसपास श्रीहनुमानजी के तेज की उपस्थिति का संकेत सुगमतया मिल जाता है। इसलिए हमें भी सदैव यही प्रयास करना चाहिए कि हम श्रीहनुमानजी के प्रति मनसा-वाचा-कर्मणा शरणागत रहें। हनुमदुपासना से क्या नहीं मिलता है! नारायणस्मृतिः॥

***

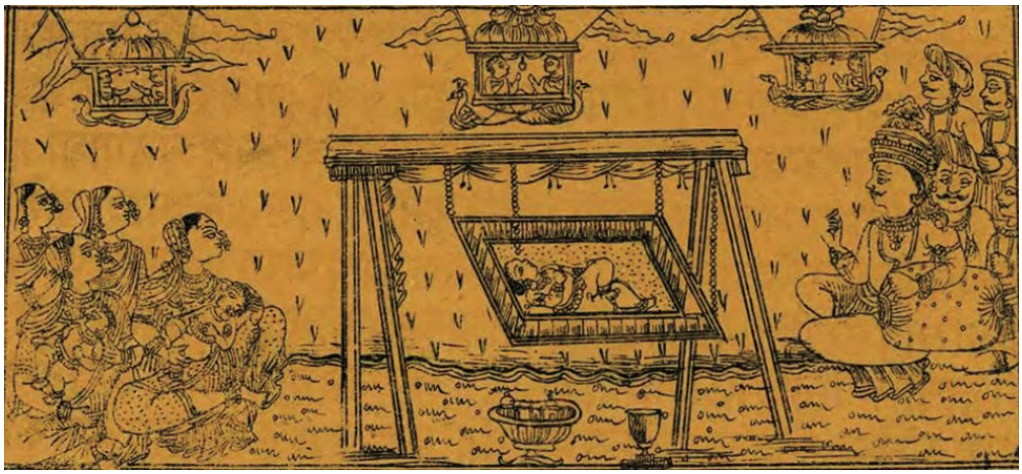

पालना पर श्रीराम

1877ई. में प्रकाशित रामचरितमानस की प्रति से

'रामचरितमानस' से शिक्षा

डॉ. विजेन्द्र कुमार राय
एम. ए. (दर्शनशास्त्र),
पता- कुर्मी ताल (महाराजगंज), गुलजारबाग, पटना 07

यह तो सर्वमान्य तथ्य है कि रामचरितमानस का व्यापक प्रभाव हमारे समाज पर पड़ा है। इसमें तुलसीदास के कथाशिल्प की विशेषता है कि उन्होंने इसके कथा-शिल्प के माध्यम से समाज को संगठित, व्यक्ति को मर्यादित तथा राष्ट्र को सुदृढ़ बनाने की दिशा में प्रयास किया है। एक प्रकार से कहा जाये तो तुलसीदास रामकथा के एसे सम्पादक हैं, जिन्होंने उपर्युक्त कार्यों को मूर्त रूप देने के लिए इसका लेखन किया तथा रामलीला, प्रवचन आदि के द्वारा इसे जन-जन तक फैलाया। आज की परिस्थिति में रामचरितमानस कैसे प्रासंगिक है, इसका विवेचन सामान्य शब्दों में किया जाना चाहिए। हमारी युवा पीढ़ी आज प्रैक्टिकल हो रही है, उसे दर्शन नहीं चाहिए, उसे धरातल की बातें चाहिए ताकि वह यह होना चाहिए यह नहीं होना चाहिए- के बीच अन्तर स्पष्ट कर सके। इसी उद्देश्य से यह आलेख लिखा गया है।

अद्वैतवाद, जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, जिसमें द्वैतवाद का पूर्णतया अभाव हो। अर्थात् एक ऐसा तत्त्व, जिससे भिन्न काई दूसरा तत्त्व न हो। यही एकमात्र तत्त्व ब्रह्म है, जो अजन्मा, अविनाशी, अकारण और हर देश -काल में अक्षुण्ण रहनेवाला शाश्वत तत्त्व है। जीव ब्रह्म से भिन्न नहीं है किन्तु, अविद्या, माया या अध्यास के कारण वह अपने को भिन्न समझता है। पर, जैसे ही उसे ब्रह्मज्ञान होता है, अर्थात् **'अहं ब्रह्मास्मि'** का बोध होता है, यह भेद समाप्त हो जाता है और उसका ब्रह्म के साथ एकाकार स्थापित हो जाता है।

इसी प्रकार, जगत् का अस्तित्व भी अविद्या या माया के आश्रित है। माया के कारण ही जगत् मिथ्या होते हुए भी सत्य प्रतीत होता है। कहा भी गया है-

"यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः"।

वस्तुतः जगत् की सताएँ तीन हैं- प्रतिभासिक सता, व्यावहारिक सत्ता और परमार्थिक सत्ता। प्रतिभासिक सत्ता स्वप्नावस्था या सुसुप्तावस्था के सत्य हैं, जिसका खण्डन जाग्रदवस्था से होता है। अर्थात् जगत् व्यावहारिक रूप से सत्य है। लेकिन, जब हम मृत्यु के पश्चात् परमार्थिक अवस्था में पहुँचते हैं, तो जगत् की इस व्यावहारिक सता का भी खण्डन हो जाता है। इसे उदाहरण द्वारा स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि जिस प्रकार अंधरे पड़ी रस्सी सर्प दिखाई देती है या चाँदनी रात में सीप चाँदी दिखाई देती है, उसी प्रकार माया नाना रूप जगत् को भासित कराकर भ्रम उत्पन्न करती है और जीव इसी भ्रम में फँसकर अपने को ब्रह्म से अलग समझने लगता है। फलस्वरूप वह 'मैं',

'मेरा', 'तुम', 'तुम्हारा' के द्वैतभाव से ग्रस्त हो जाता है, जो उसके दुःख का कारण बनता है।

इसे एक अन्य उदाहरण से समझा जा सकता है। जिस प्रकार चुम्बक से अलग हुए किसी अणु में उसके सभी लक्षण विद्यमान रहते हैं और जबतक वह किसी कुचालक पदार्थ के आवरण से ढका रहता है, तब तक उसमें गति नहीं होती। लेकिन, जैसे ही उस पर पड़ा आवरण हटता है, वह तत्क्षण मूल चुम्बक से एकाकार स्थापित कर लेता है। उसी प्रकार जीव में भी ब्रह्म के सारे लक्षण विद्यमान रहते है, लेकिन माया के प्रभाव से वह अपने को अलग समझने लगता है। किन्तु, जैसे उस पर से माया का प्रभाव हटता है, वह ब्रह्ममय हो जाता है।

'श्रीरामचरितमानस' में तुलसीदास द्वारा उल्लिखित अद्वैतवाद एक क्रांतिकारी विचार है, जिसके प्रभाव से मानव की दशा एवं दिशा दोनों बदल सकती है और वह महामानव बनने की राह में अग्रसर हो सकता है। अद्वैतवाद के अनुसार मानव का वास्तविक रूप ईश्वरीय है और तुलसीदास उसे इसीकी अनुभूति कराना चाहते हैं।

तुलसीदास ने अपनी रचना में श्रीराम को केंद्र में रखकर उच्च अद्वैतवादी सन्देश द्वारा जीवन के प्रत्येक पक्ष को प्रतिबिम्बित करने का सफल प्रयास किया है। जनकपुर में धनुर्भंग के बाद स्वयंवर सभा में जब परशुराम आए तो उनका क्रोध सातवें आसमान पर था। सारे राजा-महाराजा डरे हुए थे। लक्ष्मण ने भी पहले अपनी बातों से पहले उनको उसकाकर क्रोधित किया और अन्त में स्वयं क्रोधित होकर उनसे युद्ध के लिए खड़े हो गए। इसका परिणाम बहुत भयंकर हो सकता था। लेकिन, जब राम ने विनम्र भाव से अपने और उनके बीच के अभेद सम्बन्ध को समझाया तो उनका क्रोध सहज शान्त हो गया और एक बहुत बड़ा अनर्थ होने से बच गया। आज भी हमारे दैनिक जीवन में ऐसी

"श्रीरामचरितमानस में तुलसीदास द्वारा उल्लिखित अद्वैतवाद एक क्रांतिकारी विचार है, जिसके प्रभाव से मानव की दशा एवं दिशा दोनों बदल सकती है और वह महामानव बनने की राह में अग्रसर हो सकता है। अद्वैतवाद के अनुसार मानव का वास्तविक रूप ईश्वरीय है और तुलसीदास उसे इसीकी अनुभूति कराना चाहते हैं।"

अनेक घटनाएँ आती हैं, जिसमें हम क्रोधित या नाराज व्यक्ति से अपनापन दिखाकर न केवल उसका क्रोध शान्त करते है बल्कि एक बहुत बड़े विवाद का सहज ही समाधान कर लेते हैं।

यह अद्वैतवाद का प्रभाव ही था कि श्रीराम ने अपनी माताओं और भाईयों कभी भेद नहीं किया। बल्कि वे तो अपनी माता कौशल्या से अधिक कैकेयी से प्रेम करते थे। कैकयी भी श्रीराम से सबसे अधिक प्रेम करती थीं। किन्तु, मंथरा की माया में फँसकर वह द्वैतवाद से ग्रस्त हो गई और भरत के लिए राजगद्दी और राम के लिए 14 वर्षों के वनवास का वरदान माँग बैठी, जो उसके महाराज दशरथ पर उधार थे। इस दौरान कैकयी के वाणी और स्वभाव में कठोरता आई। परन्तु, राम ने अपने कैकयी के साथ अद्वैत सम्बन्ध का त्याग नहीं किया। उनका स्वभाव पूर्व की भाँति सहज था। वे खुशी-खुशी पिता से आज्ञा लेकर वन को प्रस्थान कर गए। यदि वे चाहते तो युद्ध द्वारा महाराज दशरथ से अयोध्या का राज्य छीन सकते थे; क्योंकि कैकयी को वचन महाराज दशरथ ने दिया था, राम ने नहीं। साथ ही, महाराज दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र होने के नाते राज्य पर पहला अधिकार राम का ही था। परन्तु

उन्होंने ऐसा नहीं किया। ऐसा करने में माता, पिता और भाई के साथ जो उनके अभेद सम्बन्ध थे, उस पर आघात होता।

दूसरी ओर राम को अयोध्या के राजा के रूप मायाजनित भौतिक सुखभोग के बजाय वन में दुर्लभ ऋषियों के दर्शन और उनकी अमृतवाणी से अपना आध्यात्मिक विकास करने का सुनहला अवसर मिल गया। इसलिए उन्होंने कहा था 'माता कैकयी ने अनजाने में ही सही, मेरा कल्याण कर दिया'। आज भी पारिवारिक कलह आम बात है। इसी कलह के कारण संयुक्त परिवार टूटते जा रहे हैं और एकल परिवार की नई परम्परा तेजी से अपना पैर पसार रही है। परन्तु इहिास गवाह है कि विकास और प्रभाव की जो लम्बी छलांग संयुक्त परिवार ने लगाई, वैसी छलांग एकल परिवार ने कभी नहीं लगाई। एकल परिवार अपने पति-पत्नी और बच्चों में सिमट कर रह जाता है। फिर, जब बच्चे बड़े होते हैं, तो वे भी अपनी पत्नी एवं बच्चों में सिमट कर रह जाते हैं और माता-पिता को उपेक्षित छोड़ देते हैं। लेकिन, संयुक्त परिवार में सबको साथ लेकर चला जाता है। इसमें कमानेवाले तथा नहीं कमानेवाले का जीवन स्तर समान होता है। बड़ों के प्रति आदर तथा छोटों के प्रति स्नेह का भाव होता है। बुजुर्गों को उचित सम्मान और सेवा मिलती है। यह सच है कि संयुक्त परिवार के लोगों को एकल परिवार जैसी सुविधाएँ नहीं मिलती; क्योकि इसमें आनुपातिक आमदनी कम होती है। फिर भी संयुक्त परिवार में लोगों सामूहिक विकास होता है। यही विकास भारतीय संस्कृति को बल प्रदान करती है। हालाँकि, संयुक्त परिवार में एकता कायम रखने के लिए परिवार के मुखिया को बहुत कुछ बर्दास्त करने के साथ-साथ बहुत कुछ त्याग भी करना पड़ता है। इसके लिए राम का आदर्श उनके समक्ष उपस्थित है।

भारतीय संस्कृति पूरी तरह से अद्वैतवादी रही है। हमारी संस्कृति का आदर्श वाक्य 'आपसी प्रेम और भाईचारा' इसी अद्वैतवाद से प्रेरित है। हमारी संस्कृति का दामन इतना बड़ा है कि वह अमीर-गरीब, ऊँच-नीच, अछूत-दलित, देशी-विदेशी, धर्म, संम्प्रदाय, जाति, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे सबको समान रूप से अपने में समेट लेती है। तुलसीदास ने अपनी रचना में श्रीराम के द्वारा इसको बहुत सुन्दर ढ़ग से अभिव्यक्त किया है। वनगमन के दौरान जब श्रीराम अयोध्या का त्याग करके गंगा नदी के किनारे पहुँचते हैं, तो वहाँ उनकी मुलाकात निषादराज से होती है। वहाँ राम निषादराज से अपनत्व का भाव दिखाते हुए न केवल अपने साथ आसन पर बैठाते हैं, बल्कि उनको अपने भरत-जैसे भाई की संज्ञा भी देते हैं। यहाँ बताते चलें कि गाँधीजी ने भी स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान एक बार चप्पल सिनेवाले चमार जाति के व्यक्ति से अपनत्व दिखाते हुए उसको अपने साथ आसन पर बैठाया था और उसके जाति को 'हरिजन' की संज्ञा दी थी। यह शब्द आज भी व्यवहार में है।

वन में जब पहली बार श्रीराम की मुलाकात पक्षिराज जटायु से होती है और बातचीत के क्रम में यह ज्ञात होता है कि वे उनके पिता महाराज दशरथ के मित्र हैं। तब श्रीराम उनसे अपना अभेद सम्बन्ध स्थापित करते हुए उनको अपने पिता जैसा अभिभावक और संरक्षक मान लेते हैं और वन में उनसे अपनी कृपादृष्टि बनाए रखने का अनुरोध करते हैं। इस सम्बन्ध का प्रभाव इतना गहरा होता है कि जटायु सीता की सुरक्षा करते हुए अपने प्राण गँवा देता है। फिर राम अपने परिजनों की भाँति उसका दाह-संस्कार कर इस अभेद सम्बन्ध का व्यवहारिक संपादन करते हैं। सीता- हरण के बाद श्रीराम प्रत्येक वृक्ष और लताओं से सीता का पता पूछते हैं। यहाँ भी श्रीराम का पेड़-पौधों के प्रति अपनत्व का भाव प्रकट होता है। इसी क्रम में श्रीराम

"रावण भी एक ऐसा ही अहंकारी राक्षस था। उस पर माया का इतना मोटा और गहरा आवरण था कि वह अपने को सर्वशक्तिमान समझ बैठा था। सर्वशक्तिमान होने का घमंड तथा राक्षसी प्रवृत्ति, यही दो प्रमुख कारण थे, जिसके चलते उसने सीता का हरण किया और ब्रह्मस्वरूप श्रीराम को चुनौती दे डाली। वही विभीषण माया से मुक्त थे। उन्होंने राम के वास्तविक स्वरूप को पहचान लिया। इसलिए उनका राम के साथ एकाकार स्थापित हो गया।"

सुग्रीव जैसे वनवासी से भी मित्रता करते है और उनके प्रत्येक दुःख को दूर करने का वचन देते हैं। बदले में सुग्रीव उनको हरसंभव मदद करने का आश्वासन देते हैं और ऐसा होता भी हैं। हम अपने व्यवहारिक जीवन में देखते है कि हमारा दूसरों के साथ जैसा व्यवहार होता है; उसका व्यवहार भी हमारे साथ वैसा ही होता है। अगर हम किसी के साथ अच्छा या बुरा व्यवहार करते हैं तो वह भी हमारे साथ अच्छा या बुरा व्यवहार करता है! यही अद्वैतवाद का कडा सन्देश है कि हम प्रत्येक जीव को अपना समझकर उसके साथ अच्छा व्यवहार करें।

मान लीजिए कि हम तात्कालिक लाभ के लिए किसी पराया समझकर उसे धोखा देते हैं या ठगते हैं। इस ठगी से हमें जिस अनुपात में लाभ का सुख मिलता है, अगले व्यक्ति को उसी अनुपात में हानि का दुःख उठाना पडता है। साथ ही, हमें इस चतुराई का निकट भविष्य में सूद के साथ मूल्य भी चुकाना पड़ता है। क्योंकि इस सृष्टि में कर्मवाद का नियम अटल है। लेकिन अद्वैतवाद कमाल का तो देखिए- जब हम इस दृष्टि से किसी को अपना समझकर उसकी सहायता या सहयोग करते हैं, तो इससे उस व्यक्ति को जितनी प्रसन्नता मिलती है, उससे अधिक प्रसन्नता हमें मिलती है। क्योंकि लेने से देना अधिक सन्तोषप्रद होता है।

अद्वैतवाद ने कभी व्यक्ति-व्यक्ति में भेद नहीं किया। यही कारण है कि श्रीराम ने शबरी के हाथों उसके जूठे बेर खाए और उसे पुण्यलोक प्रदान किया। आज भी चुनाव के दौरान राजनेताओं द्वारा अछूतों के घर खाना खाकर उसके साथ अद्वैत सम्बन्ध होने का स्वांग रचाया जाता है। उनका उद्देश्य केवल अछूतों का कीमती वोट लेकर चुनाव जीतना होता है। चुनाव जीतने के बाद ये राजनेता अपने और अछूतों के बीच द्वैतवाद की इतनी उँची और मजबूत बाँध बना देते हैं कि न तो ये उस तरफ जाते हैं और न ही वे इस तरफ आ सकते हैं। अगर ये राजनेता सच्चे दिल से रिश्ता निभाते तो उनकी स्थिति कुछ और होती तथा भारतीय राजनीति पर जो धोखा देने का आरोप लगता रहा है वह हमेशा के लिए समाप्त हो जाता।

माया रचित भ्रम के कारण ही व्यक्ति 'मै' और 'मेरा' के अहंकार भाव ग्रस्त हो जाता है। यदि उसके पास सता और वैभव हो तो उसका अहंकार चरम पर पहँच जाता है। जहाँ से उसका विनाश प्रारंभ होता है। रावण भी एक ऐसा ही अहंकारी राक्षस था। उस पर माया का इतना मोटा और गहरा आवरण था कि वह अपने को सर्वशक्तिमान समझ बैठा था। सर्वशक्तिमान होने का घमंड तथा राक्षसी प्रवृत्ति, यही दो प्रमुख कारण थे, जिसके चलते उसने सीता का हरण किया और ब्रह्मस्वरूप श्रीराम को चुनौती दे डाली। वही विभीषण माया से मुक्त थे। उन्होंने राम के वास्तविक स्वरूप को पहचान लिया। इसलिए उनका राम के साथ एकाकार स्थापित हो गया। वैसे तो लंका मयावी राक्षसों का गढ़ था, परन्तु कुछ ऐसे राक्षस भी थे, जो राम के स्वरूप और महिमा से परिचित थे। लेकिन रावण माया के मोह में इतना अन्धा हो चुका था कि उसके डर से कुछ कह नहीं पाते थे। इसके

अतिरिक्त जिन्होंने भी साहस जुटाकर उसे समझाने का प्रयास किया उन्हें अपमानित होना पड़ा। आज भी हमारे समाज में ऐसे दबंग व्यक्ति हैं, जो हर प्रकार के कुकृत्य और गैरकानूनी काम करते हैं। इसके अतिरिक्त उनका व्यवहार अमानवीय होता है। लोग उसके डर से न तो पुलिस में उनकी शिकायत करते है और न ही न्यायालय में उनके खिलाफ गवाही देते हैं। फलस्वरूप उनका सामन्तवादी साम्राज्य निर्बाध रूप से चलता रहता है। लेकिन जब उनका सामना किसी आर्दषवादी और चरित्रवान व्यक्ति से होता है तो उसे मुँह की खानी पड़ती है। ऐसा आदर्शवादी और चरित्रवान व्यक्ति जाने-अनजाने व्यक्ति अद्वैतवाद की भट्ठी से ही तपकर बाहर निकलता है, जो मानवता के हित के प्रति समर्पित होता है। अद्वैतवाद कभी भी युद्ध का पक्षधर नहीं रहा है। वरन् वह तो जितनी भी नकारात्मक प्रवृतियाँ हैं उन्हें अपने में धारण करके सकारात्मक दिशा देने का प्रयास करता है। श्रीराम, रावण के साथ होनेवाले युद्ध को इसी उद्देश्य से टालते रहे। वे चाहते थे कि रावण पर माया का आवरण हट जाय और उसे अपने वास्तविक स्वरूप का बोध हो जाए। लंका-दहन, समुद्र पर सेतु और अंगद द्वारा रावण के दरबार में अपना पैर टिकाकर उसे डिगा देने की चुनौती देना, श्रीराम के इसी प्रयास के नतीजे थे। आज भी शक्तिशाली राष्ट्र युद्धाभ्यास और हथियारों के प्रदर्शन कर शत्रुता रखनेवाले दूसरे देशों मूक चेतावनी देते हैं। यह भी उनकी अनावश्यक युद्ध से बचने तथा अन्य देशों को अपने उद्देश्यों में शामिल करने की नीति होती है। इसी उद्देश्य से श्रीराम ने रावण को भेजे अपने सन्देश में कहा था कि वह सीता को सम्मानपूर्वक लौटा दे और उनकी शरण में आ जाए। जिस प्रकार मायामुक्त जीव का ब्रह्म से भेद मिट जाता है, उसी प्रकार प्रभु राम अपने और रावण के बीच भेद मिटाकर उसका कल्याण करना चाहते थे। यहाँ एक और बात उल्लेखनीय है। राम ने रावण के साथ केवल अपनी पत्नी सीता के लिए नहीं बल्कि अखिल विष्व के सम्पूर्ण नारी जाति के सम्मान के लिए एक धर्मयुद्ध किया था। यह उनके व्यापक अद्वैतवादी दृष्टिकोण का परिचायक था। उन्होंने सीता के सम्मान को दूसरी नारियों के सम्मान से अलग नहीं किया। आज राम को अपना आदर्श माननेवाले लागों की यह नैतिक जिम्मेदारी नहीं बनती कि वे अपने घर-परिवार की स्त्रियों के समान ही दूसरी स्त्रियों का आदर करें? आज समाज में नारियों की जो दुर्दशा है, वह किसी से छिपी नहीं है। स्त्रियों के साथ किया जानेवाला भेद-भाव और दुष्कर्म, उनपर किया जानेवाला अत्याचार, उनको दी जानेवाली प्रताड़ना, आज एक राष्ट्रीय समस्या बनती जा रही है। आज समाज में स्त्रियों की दयनीय दशा की स्थिति में अद्वैतवाद का दर्शन और भी प्रासंगिक हो गया। शायद ऐसी स्थिति को ध्यान में रखकर ही तुलसीदास ने श्रीरामचरितमानस में अद्वैतवाद का प्रतिपादन किया था। इसके अतिरिक्त राम ने उस युद्ध में रावण रूपी माया का नाश करके विभीषण रूपी वस्तनिष्ठ ब्रह्म की स्थापना की थी। क्योंकि ऐसा करना उनके अद्वैतवादी प्रकृति के अनुकूल था।

अद्वैतवाद न तो किसी को श्रेष्ठ या महान् मानता है और न ही किसी को तुच्छ या हीन। उसकी दृष्टि में सभी लोग समान हैं। रामराज्य की विषेशता भी यही थी कि उसमें सभी लोगों एक समान सुविधाएँ प्राप्त थीं। राज्य-प्रशासन का काम इन सुविधाओं की एकरूपता को बनाए रखना था। इसलिए राजा और उसके प्रशासन से कोई शिकायत नहीं थी। हमारे देश में भी लोगों के बीच एकरूपता लाने के लिए कई नीतियाँ बनाई गई हैं। जैसे -एक देष-एक कानून, एक देश-एक झंडा, एक देश-एक मौलिक अधिकार एवं कर्तव्य, एक देश- एक राशन कार्ड, एक देश- एक टैक्स आदि। यदि इस एकरूपता के दायरे को आगे बढ़ाया जाता जो

अद्वैतवादी दृष्टि है और इसमें एक देश-एक भाषा, एक देश- एक समान शिक्षा, एक देश- एक जीवन स्तर, एक देश- एक मानव धर्म, एक देश- एक मानव जाति आदि को सम्मिलित किया जाता तो आज हमारे देश के सामने रंगभेद, जातिभेद, धार्मिक असहिष्णुता, क्षेत्रवाद, भाषाई मतभेद, लिंगभेद और आतकंवाद की जो समस्याएँ हैं, उनका सहज ही समाधान हो जाता। लेकिन, हमारे देश में नीतियाँ तो बनाई जाती है, परन्तु उन्हें पूरी तरह जमीन पर नहीं उतारा जाता। इसका कारण अद्वैतवादी संकल्प शक्ति और मानसिकता का अभाव है। अतीत में यही अद्वैतवादी मानसिकता हमारी सबसे बड़ी ताकत रही है। इसी मानसिकता ने 'अनेकता में एकता' जैसे विचारों को जन्म दिया है। इतिहास गवाह है, जब भी हमारे देश पर कोई संकट आया है तो हमने माया से उत्पन्न रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज आदि विभिन्नता के भ्रमजाल को अपने उपर से नोंच फेका है और तुरन्त एक हो गए हैं। हमारी यही एकता किसी भी संकट पर भारी पड़ी है।

आधुनिक युग में उपभोक्तावादी संस्कृति की आँधी चल रही है। आज प्रत्येक व्यक्ति अपने को दूसरे से श्रेष्ठ सिद्ध करने में लगा है। यह संस्कृति केवल व्यक्ति और समाज तक ही सीमित नहीं है बल्कि इसने पूरी दुनिया को अपने चपेट में ले लिया है। ऐसे में अद्वैतवाद की प्रासंगिता अपरिहार्य हो गई है।

इस उपभोक्तावादी संस्कृति की अग्नि को भड़काने में विज्ञापनों ने घी का काम किया है। ये विज्ञापन क्या है? यही तो माया है, जो अपने आकर्षण में फाँसकर लोगों को उनके वास्तविक स्वरूप का भान नहीं होने देती। श्रेष्ठता के माया मोह ने विभिन्न देशों के बीच प्रतिस्पर्धा का दौर शुरू कर दिया है। इस प्रतिस्पर्धा ने महाविनाशक हथियारों के निर्माण में तेजी ला दी है। साथ ही उनका रक्षा बजट बढ़ता जा रहा है, जिसका मानव कल्याण के बजट पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है। फलस्वरूप वैश्विक बेरोजगारी और भुखमरी में वृद्धि हो रही है। इसी मोह ने उपादानों को बढ़ावा दिया है, जिसका प्रकृति पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है। उत्पादन में अधिक लाभ लेने के लिए मानव न केवल मानव का मशीनीकरण कर रहा है बल्कि उसका शोषण भी कर रहा है। इसके चलते मानव की भावनाएँ, इच्छाएँ और संवेदनाएँ मरती जा रही हैं। ऐसी स्थिति में देश और उसमें रहनेवाले लोगों को प्राकृतिक उपादानों से प्रेरणा लेनी चाहिए। सूरज बिना किसी भेद-भाव के सबको अपनी उष्मा और प्रकाश प्रदान करता है। चाँद समान रूप से सबको अपनी चाँदनी में नहलाता है। बादल सम्पूर्ण धरती की प्यास बुझाते हैं और हवा सबको अपना कोमल स्पर्ष प्रदान करती है। जब ये प्राकृतिक उपादान किसी से भेद-भाव नहीं करते तो हम मनुश्य होकर ऐसा क्यों करें? वर्तमान स्थिति में पूरे विश्व समुदाय को एक मंच पर लाने और मानवता के प्रति समर्पित होकर कार्य करने के लिए प्रेरित करने में अति महत्त्वपूर्ण भूमिका हो सकती हैं। ऐसा करके ही हम धरती को स्वर्ग से भी सुन्दर बना सकते हैं। लेकिन, उसके लिए पहली और आवश्यक शर्त है कि हम अद्वैतवादी चरित्र के साथ देवता तुल्य बनें।

***

'रामचरितमानस' की सामाजिक व राष्ट्रीय सर्वव्यापकता

डॉ. राजेन्द्र राज
स्वतंत्र पत्रकार एवं पूर्व प्राचार्य, जनता कॉलेज, सूर्यगढ़ा पुरानी बाजार, सूर्यपुरा, पोस्ट और थाना- सूर्यगढ़ा, जि. लखीसराय (बिहार), ईमेल- rajendraraj8140@gmail.com

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम का चरित तो गंगा की धारा है, जिसमें सभी कवि स्नानकर अपनी वाणी को पवित्र करना चाहते हैं। यही कारण है कि रामकाव्य की धारा हर कालखण्ड में मुखर रही है। लोकभाषा में साहित्य-लेखन की जो धारा दूसरी सहस्राब्दी में फूटी और बृहत्तर होती गयी, उसमें भी रामकथा को आश्रय बनाकर केशवदास-जैसे कवि ने रामचन्द्रिका की रचना की। पर, तुलसीदास के रामचरितमानस की तरह उसकी ख्याति नहीं हो सकी। आखिर क्या कारण था? लेखक ने स्पष्ट शब्दों में दिखाया है कि तुलसी का 'लोकसंग्रह' एक ऐसा तत्त्व है, जो उन्हें एक युगप्रवर्तक बना देता है। लेखक ने लिखा है- "तुलसीदास पहले भक्त हैं और इसके बाद ही कवि। केशवदास तो पहले कवि हैं और उसके बाद भक्त। सचमुच तुलसी भारतीय जनता के प्रतिनिधि हैं। वे राष्ट्र नायक, मर्यादावादी और भारतीय वाङ्मय पुरुष हैं। सात काण्डों में लिखा रामचरितमानस संस्कृति की पुनर्व्याख्या करनेवाला और लोकमंगल के समन्वय का ग्रन्थ है। इसमें मानवतावाद के उच्च आदर्शों को व्यवहारवाद के रूप में प्रतिबिम्बित किया गया है। उपेक्षित जन समुदाय को आस्था एवं उत्साह के भाव से संचारित करनेवाला है।"

भारतीय आध्यात्मिक चिन्तन के मूल में ईश्वर की भक्ति, उपासना और साधना सन्निहित रही है, जो शास्त्रीय युग से लेकर मध्यकाल के क्रांतिकारी आन्दोलनों एवं उत्तर आधुनिक काल के वैज्ञानिक, प्राद्यौगिकी प्रगति की इक्कीसवीं सदी में मानव समाज के लिए मानवता, कल्याण, त्याग, समर्पण, नैतिकता, उच्चादर्शों, जीवन मूल्यों की स्थापना के लिए प्रेरित कर रही है। जहाँ वाल्मीकि से कालिदास तक की परम्परा के ईश्वर भक्त कवियों ने भारतीय उप-महाद्वीप में सांस्कृतिक तथा भौगोलिक एकता कायम की, वहीं मध्यकालीन सन्त कवियों इस धारा को और भी विस्तृत बनाया। भारतीय दर्शन, साहित्य, कला और राजनीति के क्षेत्र में आश्चर्य ढंग से समानता, राष्ट्रीयता के राग सुनाई पड़े। इन सन्त कवियों ने संस्कृत के साथ क्षेत्रीय भाषाओं में जनमानस के सामाजिक चेतना को जगाने का सफल प्रयत्न किया। रूढ़ियों, अंधविश्वासों और जड़ता के विरुद्ध क्रान्तिकारी सन्देश दे कर अपनी अस्मिता एवं स्वाभिमान की पहचान कराई।

आज भी इस नई शताब्दी में विश्व को यही साहित्य रीति, स्थायित्व एवं शाश्वत मूल्यों के प्रति आस्था, विश्वास आदि प्रदान करता है, जिसे भक्तिकाल के तुलसीदास-जैसे सन्त कवियों ने व्यापक मानवीय चिन्तन धारा से सिंचित किया है। ऐसे सन्तों ने व्यक्तिगत स्तर पर जिस दुख, शोषण, भेदभाव, सामाजिक विषमता और नैतिक पतन को गहराई से अनुभव किया, उनको ईश्वर की भक्ति के माध्यम से तीव्र विचारों को

"तुलसीदास पहले भक्त हैं और इसके बाद ही कवि। केशवदास तो पहले कवि हैं और उसके बाद भक्त। सचमुच तुलसी भारतीय जनता के प्रतिनिधि हैं। वे राष्ट्र नायक, मर्यादावादी और भारतीय वाङ्मय पुरुष हैं। सात काण्डों में लिखा रामचरितमानस संस्कृति की पुनर्व्याख्या करनेवाला और लोकमंगल के समन्वय का ग्रन्थ है। इसमें मानवतावाद के उच्च आदर्शों को व्यवहारवाद के रूप में प्रतिबिम्बित किया गया है। उपेक्षित जन समुदाय को आस्था एवं उत्साह के भाव से संचारित करनेवाला है।"

सभी के कल्याण एवं सामाजिक सुधारों की दिशा में मोड़ दिया। तुलसीदास की महानता है कि उन्होंने भारतीय संस्कृति की उदारता, सहिष्णुता, व्यापकता को कवित्व में ढालकर ईश्वरीय कृपा माना।

रीतिकाल के कवियों ने संरक्षकों के गुण गाए, लेकिन तुलसी ने कहा- 'मोंको कहाँ सिकरी सों काम! 'राजसत्ता के बुलाबे को ठुकरा दिया। मध्ययुग में राजपूत राजाओं और मुगल बादशाहों के दरबार में कवियों, कलाकारों तथा संगीतज्ञों का मान-सम्मान होता था। वे राज्याश्रित हो कर कला, साहित्य आदि की रचना करते थे। आज भी कई साहित्य व कला के सेवक निराश्रित रह जाते हैं, पुरस्कारों को लौटा देते हैं। कुछ ऐसे भी होते हैं, जो पुरस्कारों और सम्मानों के लिए राजसत्ता की चाटुकारिता करते हैं। इसमें कोई शक नहीं कि जमीन प्रधान युग- सामंतवाद में किसानों की दशा दयनीय थी। कृषक और कृषक मजदूरों की स्थिति ठीक नहीं थी। अकाल व सूखे की स्थितियाँ थीं। तभी तो किसानों को चेता रहे थे- 'का वर्षा जब कृषी सुखाने। समय चूकि पुनि का पछताने। 'विलासिता पर खर्च किए जाते थे। इस काल में ही अपनी पवित्र भूमि को स्वाधीन करने के लिए घास की रोटी खाकर जंगलों में भटकनेवाले शौर्यवान् राणा प्रताप भी थे। एक प्रकार से, प्रकारान्तर से, तुलसी ने इस स्वाधीनता संग्राम के लिए तत्पर रहनेवाले शौर्य के प्रतीक महाराणा प्रताप को भी स्मरण किया है। तुलसी स्वाभिमानी थे और स्वतन्त्र रहकर उन्होंने साधना की। उनके मित्र रहीम ने उनसे आग्रह किया था। तुलसी और रहीम की मित्रता प्रसिद्ध है। सच तो यह है कि 'रामचरितमानस' जैसे ग्रन्थमें उन्होंने समस्त वेद, पुराण, उपनिषद और रामायण का पूरा निचोड़ ही रख दिया। अवधी भाषा में इस ग्रन्थको लिखा, लेकिन देवभाषा संस्कृत के श्लोकों के साथ - काव्यशिल्प एवं छन्दों की शास्त्रीयता की कसौटी पर।

'रामचरितमानस' महाकाव्य की रचनाकर गोस्वामी तुलसीदास ने जैसे कि संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते हुए अमृत की धारा बहा दी। राष्ट्रनायक और युग प्रवर्त्तक ने युगों-युगों तक के लिए भगवान् राम की भक्ति-गाथा को अमर बना दिया। सगुण और निर्गुण भक्ति की धारा बहायी। कर्म एवं पुरुषार्थ की शिक्षा दी- "कर्म प्रधान विश्व करि राखा। जो जस करहिं तो तस फल चाखा।" आज हर कोई जो ढूँढ़ना रहता है, इस ग्रन्थमें ढूँढ़ लेता है। क्या विद्वान्, क्या मूर्ख, क्या दार्शनिक, साधक और क्या गृहस्थ- सब को 'रामचरितमानस' भक्ति, प्रेम, त्याग, सेवा एवं करुणा की सीख देता है- "सीया राममय सब जग जानी, करँउ प्रणाम जोर जुग पानी।" उनके ही समकालीन कवि केशवदास की 'रामचन्द्रिका' में भले ही राम की भक्ति

की, लेकिन भाषा, अलंकार और अभिव्यंञ्जनावाद के बोझ से बोझिल; साधारण लोगों की समझ से परे।

तुलसीदास पहले भक्त हैं और इसके बाद ही कवि। केशवदास तो पहले कवि हैं और उसके बाद भक्त। सचमुच तुलसी भारतीय जनता के प्रतिनिधि हैं। वे राष्ट्र नायक, मर्यादावादी और भारतीय वाङ्मय पुरुष हैं। सात काण्ड में लिखा रामचरितमानस संस्कृति की पुनर्व्याख्या करनेवाला और लोकमंगल के समन्वय का ग्रन्थहै। इसमें मानवतावाद के उच्च आदर्शों को व्यवहारवाद के रूप में प्रतिबिम्बित किया गया है। उपेक्षित जन समुदाय को आस्था एवं उत्साह के भाव से संचारित करनेवाला है। उनके 23 ग्रन्थों में रामचरितमानस को सर्वश्रेष्ठ कृति माना जाता है, जिसमें दोहे, सोरठे, छंद, चौपाई आदि हैं। आम बोलचाल की अवधी भाषा में यह ग्रन्थ अद्भुत रूप में है।

आदिकवि वाल्मीकि ने भगवान् राम महानायक तथा अतिमानव, ईश्वरीय विशिष्टता प्रदान की तो महाकवि कालिदास ने 'रघुवंशगाथा' में धीरोदात्त नायक के रूप में राजा दिलीप, रघु , भागीरथी, दशरथ, अज का वर्णन माधुर्य व उपमा के साथ किया। राम-काव्य धारा के प्रवर्तक तुलसीदास ने रामचरितमानस में समाज में संस्कृति के उच्चतम आदर्शों को चित्रित किया। अपने उत्तरदायित्व को उन्होंने समझा। पतनशील सभ्यता में अपनी संस्कृति की चिंता की। यह ग्रन्थ पुनरुत्थानवादी सिद्ध हुआ- धर्म और राजनीति के लिए। तुलसीदास के आविर्भाव और देहावसान का काल 1554 तथा 1680 माना जाता है। उस समय सामंतवाद और साम्राज्यवाद का बोलबाला था। सामाजिक उथल-पुथल हो रहा था। विघटन से नैराश्य का वातावरण था। शासकों का प्रजा और समाज से दूरियाँ बनी हुई थीं। राजनैतिक पाखंड, छल-छद्म आदि असत्य का मिथ्याचरण बन चुका था। कर्म के स्थान पर भौतिकता एवं भोगवाद ही सब कुछ था। दूषित राजनीति को नव आध्यात्मिक स्वरूप प्रदान कर के रामराज्य का वर्णन किया जहाँ समस्त नागरिक धर्मपरायण थे, किसी को भी दैहिक, दैवी और भौतिक ताप सन्तप्त नहीं करते थे। राजनीति को धर्म से जोड़ा। धर्म का अर्थ किसी पंथ से नहीं होता- 'धारणाद्धर्म मित्याहुः एवं 'धर्मेण विधृता प्रजा।" अर्थात् धर्म सदैव कर्तव्य, न्याय एवं आचरणीय कर्म को व्याख्यायित करता है। धर्म और नीति की अवहेलना करने पर रावण जैसा शासक भी प्रजा की भर्त्सना का पात्र बना।

आज की परिस्थितियों को अगर विश्व भर में अवलोकन करते हैं तो हिंसा, जघन्य अपराध, आतंकवाद, विघटन, पृथकता, गृह-युद्ध, देशों का आपस में लड़ना, नव उपनिवेशवाद, आर्थिक साम्राज्यवाद, भूमंडलीकरण, बहुराष्ट्रीय कंपनियों के मुनाफे का व्यवसाय, परमाणु और जैविक हथियारों, मिसाइलों, बमों और आर्थिक शोषण, अपराध, भ्रष्टाचार का जाल दिखाई पड़ता है। कूटनीति और नीतिविहीनता के मुखौटे दिखाई पड़ते हैं।

महात्मा गाँधी स्वयं को हिन्दू कहलाने में गर्व का अनुभव करते थे, लेकिन दूसरे धर्मों को समान महत्त्व देते थे। उनकी दृष्टि में सभी धर्म एक ही ईश्वर या सत्य का साक्षात्कार करने की ओर ले जाते हैं। तुलसी दास के काल में सभी राजा साम्राज्यवादी और शोषण की नीतियों पर चल रहे थे। वे निरंकुशता का व्यवहार करते थे। सामंतवाद में भूस्वामियों का वर्चस्व था और श्रम पर जीने वाली प्रजा परजीवियों का शिकार थी। ऐसी स्थिति में उन्होंने सगुण भक्ति का सहारा लिया। रामकथा की अमृत धारा में बहुजन हिताय और बहुजन सुखाय के आदर्श को सामने रखा। उपेक्षित जन-समुदाय में आस्था का बीज अंकुरित हुआ।

अपने जीवन काल में तुलसीदास को संघर्षों का सामना करना पड़ा। उनके अद्भुत ग्रन्थ का विरोध इसलिए किया गया कि उन्होंने इसे हिन्दी अवधी में

लिखा। स्वयं को उन्होंने भगवान् राम के चरणों में समर्पित कर दिया। गुरु नरहरि दास से उन्होंने वेदों, शास्त्रों और ग्रन्थों की शिक्षा पाई-

बन्दौ गुरुपद-कंज कृपासिंधु नर रूप हरि।
महा मोह तम पुंज्ज,जरसु वचन रविकर निकर।'

आज गुरु-शिष्य परम्परा की भावना तिरोहित हो रही है। हमें इस बालकाण्ड के 5 वें सोरठे और गुरु महिमा के इन दोहों से सीखने की आवश्यकता है। युवा पीढ़ी दिशाहीन हो रही है और अपने आदर्शों का परित्याग कर रही है। इस स्थिति में तुलसीदास के 'रामचरितमानस' से सीख लेनी होगी। सेवक, राजा, प्रजा सभी के कर्तव्य बताए गए हैं। शबरी और केवट की भक्ति है। शरणागत विभीषण हैं। हमारी संस्कृति में अतिथि-सेवा और शरणागत की रक्षा करना परम कर्तव्य माना जाता है।दलाई लामा को भारत ने शरण दे कर विश्व में आदश्र प्रस्तुत किया है। काशी में उनकी ही प्रेरणा से रामलीला की शुरूआत हुई। इसके पहले नौटंकी का प्रचलन था। यही कारण है कि उन्होंने अपने ग्रन्थ 'रामचरितमानस 'में पुष्पवाटिका प्रसंग को जोड़ा। सीता-स्वयंवर का अद्भुत दृश्य उत्पन्न किया। मर्यादा और पुरातन संस्कृति के आधार पर भगवान् राम-सीता के प्रेम व सौंदर्य को मर्यादित रूप में प्रस्तुत किया।

रामचरितमानस को पाठ्य-पुस्तकों से ले कर तुलसी जयन्ती, संकीर्तन, सत्संग और प्रवचनों में सुना है। हमारी दिनचर्या ही उनके दोहे व चौपाइयों से शुरू होती है। गाँव का एक साधारण किसान या ग्रामीण कंठस्थ किए हुए है। गांवों में अभी भी कई दालानों तथा मन्दिर में इसका पाठ होता है। रामनवमी हो या दशहरा - रामचरितमानस के पाठ किए बिना सब कुछ व्यर्थ लगता है। राष्ट्रकवि स्व. रामधारी सिंह दिनकर के सिमरिया स्थित पैतृक गाँव में अभी भी रामचरितमानस ग्रन्थ सँजोग कर रखा हुआ है, जिनका पाठ वे गाँववालों के साथ रोज करते रहे। कविवर मैथिलीशरण गुप्त ने यशोधरा, अमृतलाल नागर के 'मानस का हंस', कामिल बुल्के और कई विद्वानों ने पुस्तकों की रचना प्रेरणा ले कर की है। आज के दौर में भी रचनाकार और साहित्यकार इससे प्रेरित हो रहे हैं। देश की अन्य धार्मिक व साहित्यिक संस्थाओं के समान पटना के महावीर मन्दिर में 'धर्मायण' पत्रिका में आचार्य कुणाल के नेतृत्व में भवनाथजी एवं पूर्व के मानस, साहित्य संस्कृति के मर्मज्ञ विद्वानों के द्वारा अध्यात्म की धारा बहाई जा रही है।

तुलसीदास और अन्य सन्त कवियों की विशेषताएं रहीं कि उन्होंने जनसाधारण से संवाद किया। स्वयं को दीन, हीन,पापी और कुटिल माना। 'मो सम कौन कुटिल खल कामी।' सन्तों और सज्जनों का हृदय निर्मल होता है, लेकिन आत्माभिव्यक्ति में वे स्वयं को कितना निरंहकारी मानते हैं। यह विनम्रशीलता की पराकाष्ठा है। आज के युग में किसी की निंदा की जाए तो वे तिलमिला जाते हैं और भीतर की छुपी कलुषित भावनाएं, प्रतिशोध और अहंकार बाहर आ जाते हैं। निंदक को दंडित और हिंसा का शिकार होना पड़ता है। अपने 'रामचरितमानस' के बालकांड 7 वें दोहे में विनम्रता के साथ कहा-

नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथा-
भाषानिबद्धमतिमञ्जुलमातनोति।

आगे उन्होंने कहा-

कवि न होउँ नहिं चतुर प्रवीनू।
सकल कला विद्या सब हीनू।।

सन्त कवि ने दूसरे के अवगुण को छुपानेवाले को महान बताया है-

क्षमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई।
सुनिहहिं बाल वचन मनसाई।।

कवित्त विवेक एक नहीं मोरे
सत्य कहौं लिख कागद कोरे।।

तुलसी जैसे महान आत्मावाले ही कह सकते हैं-

पराधीन सपनेहूँ सुख नाहीं।

और

कोउ होउ नृप हमें का हानि।

लोकभाषा में 'रामचरितमानस' की रचना करना और मर्यादापुरुषोत्तम के रूप में भगवान् राम की भक्ति, महिमा, राष्ट्र, संस्कृति, परम्परा,आदर्श तथा समकालीन परिस्थितियों का चित्रण करना ही उनका ध्येय रहा। यश और सम्पत्ति के लोभ से परे। केशवदास की 'श्रीरामचन्द्रिका' पुस्तकालयों की शोभा बढ़ा रही है, लेकिन तुलसी का रामचरितमानस ग्रन्थ घर-घर पूजा जा रहा है। रामायण का अर्थ जहाँ राम की यात्रा है, वहीं रामचरितमानस का अर्थ राम के चरित्र का सरोवर। यह मानसरोवर प्रतीकात्मक रूप में लालित्य व पांडित्यपूर्ण ढंग से वर्णित है। इस मानसरोवर का तल पृथ्वी गंभीर हृदय में सुदर बुद्धि है, वेद व पुराण समुद्र के समान तथा सन्त बादल के समान। तुलसी लोकनायकत्व के गुण से पूर्ण हैं। पारलौकिकता और अध्यात्म की सूक्ष्म भावनाओं को पिरोया ही नहीं है, बल्कि सांसारिकता पर भी ध्यान दिया है। कामी पुरुषों को नारी प्यारी लगती है और लोभियों को धन। इस काल खंड में कुटिलता ही कुटिलता,पर की निंदा ही निंदा, छिद्रान्वेषण, प्रदर्शन तथा आडंबर ही आडंबर हैं। भगवान् श्रीराम को मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप मे वर्णन किया और सुन्दर चरित्रों का निर्माण किया, जो आज भी प्रेरणादायी है।

***

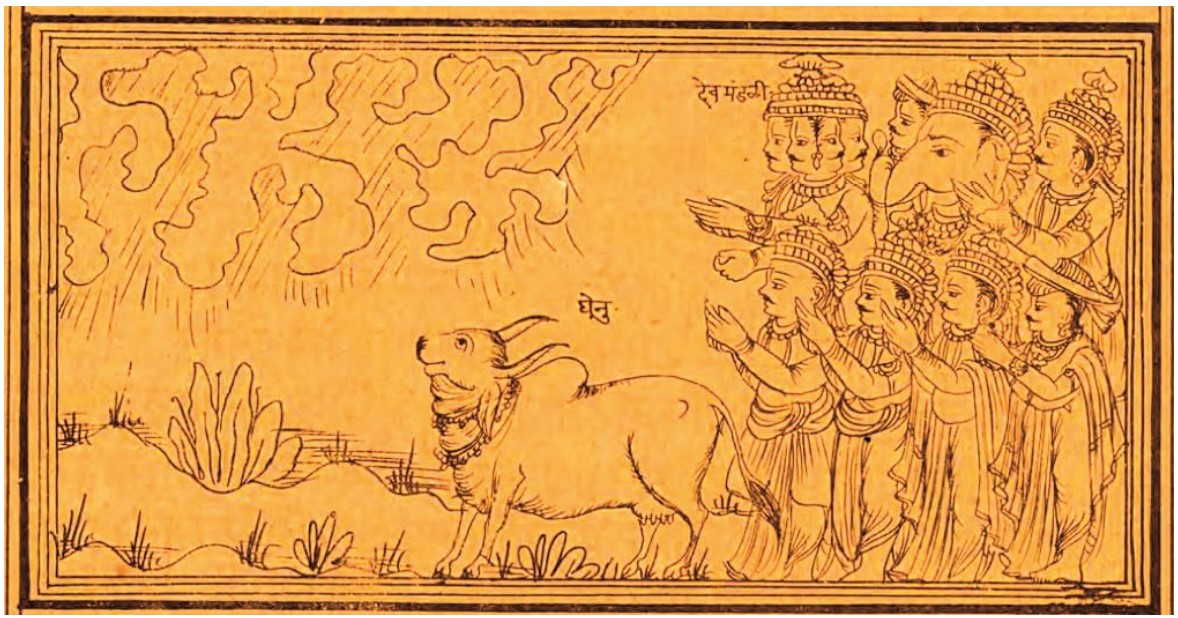

1877 ई. में प्रकाशित रामचरितमानस के बालकाण्ड 186 पर धेनु रूप में पृथ्वी के द्वारा देवताओं के साथ विष्णु के निकट गमन। 1828ई. में प्रकाशित रामलीला के विवरण में स्पष्ट है कि इस दृश्य को आरम्भ में अवश्य दिखाया जाता था।

नव जीवन और वसन्त- ऋतूनां कुसुमाकरः

श्रीमती रंजू मिश्रा
द्वारा, श्री बी.के. झा, प्लॉट सं. 270, महामना पुरी कालोनी, बी.एच. यू., वाराणसी।

वसन्त नवजीवन का सन्देश देता है, तभी तो ऋग्वैदिक काल में जब कार्तिक महीने में वसन्त ऋतु होती थी तब भी इसी से वर्ष का आरम्भ माना जाता था। आज भी हम वसन्तकाल से नववर्ष का आरम्भ करते हैं। इसमें सूर्य की सौरिका नामक रश्मि हमें नयी ऊर्जा प्रदान करती है। लेखिका की मान्यता है कि प्रसूति घर के लिए भारतीय भाषाओं में जो शब्द हैं, वे सौरिका से तालमेल रखते हैं।

वेदों के रचयिता से लेकर अद्यतन, साहित्य की सभी विधाओं के रचनाकारों ने वसन्त ऋतु का भरपूर महिमामंडन किया है। भिन्न-भिन्न उद्देश्यपरक रचनाओं में भी शायद ही कहीं इसे भुलाया गया हो। किसी को इसके सौंदर्य ने मोहा तो किसी को इसकी उपयोगिता ही भाया। बहाने बनते गये, काव्य रचते रहे। वसन्त अपने चुम्बकीय प्रभाव से सबको मोहपाश में बाँधकर रखता रहा।

हो भी क्यों न, सौंदर्य के रूपजाल से भला कौन बचा है। सौंदर्य तो कुछ क्षण के लिए ही सही, मनुष्य के मन मस्तिष्क पर अपना अधिकार तो जमा ही लेता है, परिणाम सकारात्मक हो या नकारात्म इस अदृश्य अस्त्र में बहुत शक्ति होती है, जो मनप्राण के संचार को क्षणिक स्थिर कर देती है। प्रकृति के इस आलंबन से नियंताओं ने अपनी सृष्टि को संचालित करने के लिए ही शायद इसमे इतना सौंदर्य भर इसे उद्दीपक बना दिया जिसके वशीभूत यह संसार चलता रहता है। प्रकृति प्रदत्त सौंदर्य में उद्दीपन होता है।यह स्थायी भाव को उद्दिप्त कर देता है और मूलतः सृष्टि की व्यवस्थाओं का रहस्य भी यही है। इन सारी व्यवस्थाओं के नियंता पूर्णतया सूर्यदेव हैं।

सूर्य जगत्कर्ता हैं। चराचर दृश्यमान संसार उनका ही परिवार है। उन्हें पता है कि कब हमारे इस प्रकृतिरूपी संसार के संचालन में किस चीज की जरूरत है। उनका विराट् तत्त्वस्वरूप में उपस्थिति ही पृथ्वी पर समस्त प्राणियों का प्राणस्रोत है। वही पालक है। जैसे एक पिता परिवार के भरण पोषण के लिए कमाकर एक गृहणी के हाथों में धर देता है, वैसे ही सूर्य ही पिता की भाँति इस पृथ्वीरूपी घरनी को सब कुछ थमा देता है। ऋग्वेद (1.115) की चौथी ऋचा इन्हीं की महिमा गाती है-

तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततं सं जभार।
यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै॥

तरणि और धरणि के बीच अनवरत गुप्त क्रिया-व्यापार से ही पालित है यह संसार।

अपने अक्ष पर सूर्य के चारो ओर घूमती पृथ्वी अपनी जरूरतों को पूरा कर लेती है। दिन रात का चक्र हो या ऋतु परिवर्तन, सभी का इस सृष्टि मे महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन परिवर्तनों के कारण प्रकृति में बदलाव आता है, जिसका प्रभाव प्राणियों पर पड़ता है। इस बदलाव के आलम्बन से शरीर में उपस्थित स्थायीभावों में उद्दीपन होता है। वसन्त ऋतु के आगमन से शरद, हेमन्त का जकड़न मिट जाता। सुन्दर मनोहारी दृश्य से हर्षित मन उल्लास से भर उठता है, जिसका प्रभाव इन्द्रियों मे प्रेरक का काम करता है। सृष्टि रचना की माया का अद्भुत खेल!

मनुष्य को छोड़कर अन्य सभी प्राणधारियों मे मात्र दो ही कर्म -उद्देश्य नियत होता है। एक उसका अपना पोषण और दूसरा अपने वंश की वृद्धि, जो उसकी स्वतःप्रेरित प्रवृति होती है। लेकिन यह स्वतःप्रेरित प्रवृत्ति का कारक भी सूर्य ही है। भिन्न भिन्न ऋतुओं में सूर्य से भिन्न भिन्न रश्मियों का निस्सार होता है, ये सभी शक्तियाँ प्राणियों मे उत्प्रेरक का काम करती है।

वसन्त ऋतु हमारे हृदय में श्रृंगार रस की वृद्धि करती है, क्योंकि इस ऋतु में हमें सूर्य से 'सौरिका' संज्ञक शक्ति मिलती है। इस संधि-काल में चंद्रतत्त्व की शीतलता और सूर्यतत्त्व की ऊष्मता के कारण से उत्पन्न समशीतोष्ण प्रभाव में जीवनी शक्ति निहित होती है। सौरिका संचार को हमारे मनीषीयों ने पुष्ट किया है। जीवन को पनपने के लिए सम्यक् शीत और ताप की आवश्यकता होती है। सौरिका शक्ति के प्रभाव से ही बसन्त ऋतु में इतना परिवर्तन होता है। शाख-शाख, पात-पात खिल उठता है एक नये पीढ़ी के निर्माण के लिए। वंशवृद्धि का उत्सव चरम पर होता है। आयुर्वेद कहता है कि बसन्त ऋतु में हमारी सप्त-धातुओं का पोषण होता है, जो स्वस्थता के चरम को पाकर नव निर्माण का कारक बनता है।

सूर्य की 'सौरिका' संज्ञक किरणें ही जीवनदायी हैं, परम्पराओं से भी यह तथ्य सिद्ध है। जहाँ बच्चा जना जाता है, उसको हम लोग 'सोइरी' ही तो कहते है।

धन्य वसन्त तुम, धन्य है तेरी चाल।
तेरे बिनु क्या फैल सकेगा सृष्टि का मायाजाल।।
कामदेव के पुष्प-बाण से, बौराते मन आज।
मधुमय मन ले रहा हिलोरें, भूला मानव काज।।
कठिन साधना चंचल मन को, जूझ रहे हैं लोग।
द्वन्द्व छिड़ा है अब धरती पर, चुने योग या भोग॥

***

अवध की होरी

(विश्वरूप स्वामी कृत 'हरिहर सगुन-निर्गुण पदावली' से)

[होरी काफी राग]

राम लषन सिय होरी खेलें आजु उमंग चहुँ छाजे।
धाई सखी निज यूथ बनाई पहुँचि सबै दरवाजे ॥1॥
रतन जड़ित आसन पर बैठे भूषन अमित बिराजे।
होरी कोच मची चहुँ ओरी बरषत घन जिमि गाजे ॥2॥
सकल भूति मूरति धरि धरिके करों तिलक शिर ताजे।
'विश्वरूप' सतगुरु परचे बिनु होत न दृग अनुरागे ॥3॥

[होरी भैरव राग]

मुनि समाज मिलि चित्रकूट मह रघुबर खेलत होरी॥
सब तीरथ निज निज विभूति युत रूप अनूप धरोरी।
आये जहाँ रघुबीर जानकी रघुकुल चन्द चकोरी ॥1॥
आये सुरेश शेष बिधि शंकर सहित नगेश किशोरी।
वनचर वृन्द सखा सब आये विशद समाज भरोरी॥ 2॥
सुर बनिता सब बनि बनि आई बसन तड़ित छबि छोरी।
तेहि समाज शोभा को बरने शरद प्रति सकुचे री॥ 3॥
केसरि रंग अबीर उड़ाबति ढोलक बीन बजारी।
'विश्वरूप' जग भूप राम छबि जिमि रबि उदय भयोरी॥ 4॥

नवलकिशोर प्रेस, लखनउ, प्रथम संस्करण, 1881ई., पृ. 28

बौद्ध साहित्य में रामकथा

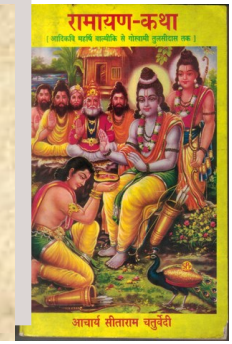

आचार्य सीताराम चतुर्वेदी

यह हमारा सौभाग्य रहा है कि देश के अप्रतिम विद्वान् आचार्य सीताराम चतुर्वेदी हमारे यहाँ अतिथिदेव के रूप में करीब ढाई वर्ष रहे और हमारे आग्रह पर उन्होंने समग्र वाल्मीकि रामायण का हिन्दी अनुवाद अपने जीवन के अन्तिम दशक (80 से 85 वर्ष की उम्र) में किया वे 88 वर्ष की आयु में दिवंगत हुए। उन्होंने अपने बहुत-सारे ग्रन्थ महावीर मन्दिर प्रकाशन को प्रकाशनार्थ सौंप गये। उनकी कालजयी कृति रामायण-कथा हमने उनके जीवन-काल में ही छापी थी। उसी ग्रन्थ से रामायण की कथा हम क्रमशः प्रकाशित कर रहे हैं।

– प्रधान सम्पादक

बौद्ध साहित्य में अनामक और दशरथ-जातक में बहुत विकृत की हुई रामकथा मिलती है।

दशरथ -जातक की रामकथा

दशरथ वाराणसी के राजा थे। इनकी बड़ी रानी के तीन सन्तानें थीं- दो पुत्र (राम पंडित और लक्खन) और एक पुत्री (सीता देवी)। इस रानीके मरनेपर दशरथ ने दूसरी रानी को पटरानी बना दिया जिससे एक पुत्र (भरत कुमार) हुआ और तभी राजाने उसे एक वर दिया। जब भरत सात वर्ष के हुए तब रानी ने राजा से अपने पुत्र को राज्य देने को कहा पर राजा ने स्वीकार नहीं किया। जब रानी बार-बार यही कहने लगी तब राजा ने उसके कुचक्र से डरकर अपने दोनों बड़े पुत्रों को बुलाकर कहा कि यहाँ रहने से तुम पर संकट आ सकता है इसलिये किसी दूसरे राज्य या वन में जा रहो और मेरे मरने पर आकर राज्य ले लेना। पूछने पर ज्योतिषियों ने राजा से कहा कि आप बारह वर्ष और जीयेंगे। इस पर दशरथ ने अपने पुत्रों से कहा कि बारह वर्ष बाद आकर छत्र उठा लेना। दोनों भाइयों के साथ सीता भी चल दीं और कुछ नागरिक भी साथ चल दिए। अन्य सबको लौटाकर ये तीनों हिमालय में आश्रम बनाकर रहने लगे। नौ वर्ष पश्चात् पुत्र-शोक से दशरथ मर गए। अमात्य और भरत के विरोध के कारण भरत को रानी राजा नहीं बना पा सकी। भरत अपनी सेना लेकर राम को लौटा लाने के लिये वन में चले गए। वहाँ राम उनसे अकेले मिले। भरत उनसे पिता के देहान्त का समाचार कहकर रोने लगे किन्तु राम पंडित न तो रोए और न उन्होंने शोक किया।

सन्ध्या को लक्खन और सीता लौटकर पिता के देहान्त का समाचार पाकर जब शोक करने लगे तब राम पण्डित ने उन्हें धैर्य बँधाया। भरत के बहुत कहने पर भी राम नहीं लौटे और अपनी 'तिण्णपादुका' भरत को दे डाली, जिसे लेकर भरत, लक्ष्मण और सीता सबके साथ वाराणसी लौट

आए। अमात्य त्रिलोक इन पादुकाओं के सामने ही सब राज-काज करने लगे। जब कभी कोई अन्याय होता था तब वे पादुकाएँ एक दूसरे पर खट-खट करने लगती थीं और न्याय होने पर वे शान्त हो जाती थीं।

इस घटना के तीन वर्ष पीछे राम पण्डित ने लौटकर अपनी बहन सीता से विवाह किया और सोलह सहस्र वर्ष राज्य करके स्वर्ग चले गए।

अनामक जातक

अनामक जातक के अनुसार विमाता के कारण रामको वनवास नहीं दिया जाता। अपने मामा के आक्रमण की तैयारियाँ सुनकर उन्होंने स्वयं राज्य छोड़ दिया।

चीनी रामकथा

चीनी त्रिपिटक में त्सा-पौ-त्सङ्-किङ् नामक अवदान-संग्रह के एक दशरथ- कथानक में रामकथा का उल्लेख मिलता है जिसमें सीता या किसी अन्य राजकुमारीका उल्लेख नहीं है। इसके अनुसार दशरथकी चार रानियों में से पहली से राम, दूसरी से रामन (रोमण-लक्ष्मण), तीसरी से भरत और चौथी से शत्रुघ्न हुए थे।

***

सीता-जन्म के अनेक कारण

1. महाभारत, हरिवंश की रामकथा, पउमचरिउ तथा पद्मचरित और आदि रामायण के अनुसार सीता जनक की पुत्री थीं।
2. वाल्मीकि रामायण और उसके आधारपर लिखे हुए अन्य रामायणों- के अनुसार सीता पृथ्वीकी पुत्री थीं। वाल्मीकि रामायण के उत्तरी पाठ में सीता को जनक तथा मेनका की मानसपुत्री भी बताया गया है। उत्तर-पुराण, विष्णु-पुराण, महाभागवत-पुराण, काश्मीरी रामायण, तिब्बती तथा खोतानी रामायणों के अनुसार सीता रावण की पुत्री थीं।
3. दशावतार चरित्र के अनुसार सीता कमल से उत्पन्न हुई थीं।
4. अद्भुत रामायण के अनुसार ऋषियों के रक्त का पान करनेवाली मन्दोदरी के गर्भ से सीता उत्पन्न हुई।
5. आनन्द-रामायण के अनुसार सीता अग्नि से उत्पन्न हुईं।
6. 'दशरथ-जातक', जावा के 'रामकेलिंग', मलय के 'सेरीराम' और 'ईकायत महाराज रावण' के अनुसार सीताजी रावण की पुत्री थीं।

***

19वीं शती में जब स्त्रियों की शिक्षा पर विशेष जोर दिया जा रहा था तब हिन्दी भाषा के माध्यम से अनेक रोचक ग्रन्थों की रचना हुई, जिनमें कहानियों के माध्यम से महत्त्वपूर्ण बातें बतलायी गयी। ऐसे ग्रन्थों में से एक 'रीतिरत्नाकर' का प्रकाशन 1872ई. में हुआ। उपन्यास की शैली में लिखी इस पुस्तक के रचयिता रामप्रसाद तिवारी हैं।

इस पुस्तक में एक प्रसंग आया है कि किसी अंगरेज अधिकारी की पत्नी अपने बंगला पर आसपास की पढ़ी लिखी स्त्रियों को बुलाकर उनसे बातचीत कर अपना मन बहला रही है। साथ ही भारतीय संस्कृति के विषय में उनसे जानकारी ले रही है। इसी वार्ता मंडली में वर्ष भर के त्योंहारों का प्रसंग आता है। पण्डित शुक्लाजी की पत्नी शुक्लानीजी व्रतों और त्योहरों का परिचय देने के लिए अपनी दो चेलिन रंगीला और छबीला को आदेश देतीं हैं।

यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि यह ग्रन्थ अवध प्रान्त के सांस्कृतिक परिवेश में लिखा गया है। इसमें अनेक जगहों पर बंगाल प्रेसिडेंसी को अलग माना गया है।

सन् 1872 ई. के प्रकाशित इस ग्रन्थ की हिन्दी भाषा में बहुत अन्तर तो नहीं है किन्तु विराम, अल्प विराम आदि चिह्नों का प्रयोग नहीं हुआ है जिसके कारण अनेक स्थलों पर आधुनिक हिन्दी के पाठकों को पढ़ने में असुविधा होगी। इसलिए यहाँ भाषा एवं वर्तनी को हू-ब-हू रखते हुए विराम-चिह्नों का प्रयोग कर यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। पाठकों की सुविधा के लिए कुछ स्थलों पर अनुच्छेद परिवर्तन भी किए गये हैं। जिन शोधार्थियों को भाषा-शैली पर विमर्श करना हो, उन्हें मूल प्रकाशित पुस्तक देखना चाहिए, जो Rītiratnākara के नाम से ऑनलाइन उपलब्ध है।

अवध क्षेत्र में

19वीं शती की विवाह-विधि

जयंती का विवाह

पिछले अंक में आपने पढ़ा कि 19वीं शती में विवाह होने के दिन किस प्रकार बारात आने की धूम होती थी। बारात आ जाने के बाद लड़के के पिता अपना सारा कर्तव्य निभाते थे। विवाह के समय जो व्यय होता था वह वर के पिता खर्च करते थे। इस पारम्परिक विधि में हम कहीं दहेज नहीं देखते हैं, इसका अर्थ है कि दहेज लेना-देना बिल्कुल आधुनिक कुरीति है।

विवाह कर्म में चार प्रकार की गीतें गाई जाती हैं 1. व्याह 2. सोहाग 3. जोग 4. टोना।

जब सब प्रकार द्वारपूजा हो चुकी और बरात जनवासे चली तो उसके साथ ही साथ वह चारों स्त्रियाँ जो सिर पर कलसा लिये हुए खड़ी थीं जनवासे तक गईं। चारों पीतल के घड़े और 4 गड़ए और चार कटोरे और चार पीतल के दिये समधी को सौंप अपना नेग लेकर चली आई। जो नाई पाँव धोने के लिये गया रहा उसने पहिले पण्डित और पुरोहित का पाँव धोया फिर समधी और उसके भाई-बंधु और नातेदारों का पाँव धोया और अपना गोड़धेवे का नेग लेकर लौट आया।

फिर भाती खिलाने के लिये थार में दही, मिठाई आदि लेकर गया गाँव में यह रीति है कि भाती के साथ स्त्रियाँ गाती हुई जाती हैं। नाई दूलह के पास जाके भाती खिलाता है और स्त्रियाँ जनवास से थोड़ी दूर पर खड़ा होकर गाती हैं। जब नाई खिलाके लौट आता है तो वह भी घर को लौट आती हैं। परन्तु शहरों में यह रीत कम है, बहुधा नाई ले जाता है। सो जब नाई भाती लेकर गया तो दूलह और उसके साथी दो चार लड़कों ने थोड़ा थोड़ा जीम लिया और सब जूठ नाई ले गया। इसके सिवाय और भाती खिलाई का नेग मिला। जब भाती खिलाके नाई लौट आया तो बरात में कलेवा भेजा गया, तब पण्डितों ने कहा कि भाई, अभी से ब्याह की तैय्यारी करो ऐसा न हो कि लगन बीत जाय।

यह बात होती रही कि समधी का नौकर आनकर बोला कि महाराज अभी से ब्याह की रीति भाँति का प्रारंभ करो जिससे अच्छे मुहूर्त में पाणिग्रहण हो जाय। यह बात सुन लोगों ने कहा कि यही तो हम भी चाहते हैं, पर यह कार्य लुगाइयों के आधीन है, जो वह फुरती करें, तो सब बात सधेगी नहीं तो किसी का कुछ बस नहीं है। फिर मैंने नेता से कहा कि बहिन यह सब लोकाचार तुम भुकताओ और जो कुछ पैसा चाहिये सो अपने पास रक्खो में बरातियों के खिलाने-पिलाने का उपाय करती हूँ। यह बात सुन नेता और कृष्णा बीबी चढ़ाव के उपाय में लगी। तब बरात में चढ़ाव चढ़ाने के निमित्त बुलाया गया। बरातियों में से पाँच-सात अच्छे-अच्छे सवांग चढ़ाव का पिटारा लिवाके झट-पट आ गये।

पण्डित ने आटे की चौक पूरा और कन्या के बैठने के लिये एक पत्तल रखवा दी। नाइन कन्या के हाथ में सिंधोरा रखके मंडप में लाई। प्रथम गोरि-गणेश की पूजा हुई, फिर लड़की के हाथ में चावल और एक भेली गुड़ और सेंदुर की डिबिया, 1 नारियर, 1 रुपया रखके सब कपड़ा और गहना जो लड़की की ससुराल से आया रहा, पत्तलों पर रख दिया गया। जैसे- तागपाट, टीका, बेना, बेनीपात, बंदी, पचलड़ी, चंपाकली, बद्धी, हबेल, बाजू, जोशन, बैरखी, नौगिरही, बहुटा, हंसुली, झुमका, करनफूल, सोने की पहुंची, चूहादंती, पाइज़ब, कड़ा, घूघुर, गुजरा आदि गहने जो सब मिलाके तीन चार सौ रुपये के होंगे और सौ डेढ़ सौ रुपये का कपड़ा लदाव का जिसमें सर्वत्र सुनहरा काम था। जिस समय चढ़ाव चढ़ा, सब कपड़ा सादा और कामदार और सोने रूपे का गहना निकालके मंडप में रक्खा गया। उस जून आँगन जगमग हो गया, जिसको देखकर हमारे हित मित्रों की गज भर की छाती हो गई और सब स्त्रियाँ कहने लगी कि छाबस है; अच्छे गृहस्थ के साथ सम्बन्ध हुआ है, चाहे ख़र्च जितना हो, पर लड़की तो सुख में रहेगी।

जब बराती लोग गहना कपड़ा देकर दुआरे पर जा बैठे तो लड़की को नाइन कोहबरे ले गई। चढ़ाव में पूजा और नेग के मध्ये जो कुछ रुपया पैसा खर्च हुआ, वह सब समधी की ओर से, क्योंकि यह उसी का पद था॥

इसके पीछे सब लोग गुल मचाने लगे कि जल्दी से खार छुड़ाओ लगन बीतने चाहती है, व्याह का आरंभ हो। मैंने कहा कि धोबिन अभी तक नहीं आई, खार क्योंकर छूटे। कई पठवनियाँ तर पर धेबिन के घर पर गये। वह भैया मुई क्या जानें, कहाँ गुम थी कुछ भी पता न लागा, तब लोगों ने कहा कि किसी दूसरी धोबिन को बुलालाओ। यह बात हो रही थी कि वह हालती काँपती एक खूटा और नाँद लिये हुए आन पहुँची। जान पड़ा कि वह कहीं दूसरी जगह गई रही, क्योंकि उस लगन में बहुत से व्याह थे। उसकी सूरत देखते ही कृष्णा बीबी बोली कि यहाँ की धोबिन भी बड़ी घमंडी होती हैं, कहीं हेरे नहीं मिलती। यह बात सुन वह बोली कि मैं जानूँ कि तुम्हारे यहाँ सवेरे व्याह होगा, नहीं तो मैं पहिले यहाँ होके तो दूसरी जगह जाती। इसके पीछे परदा खड़ा किया गया और कृष्णा बीबी का बेटा श्यामकिशोर, जो

नेहछू गीत

राम राम रघुनन्दन श्री भगवान दसरथ के कुल नन्दन शरण तुम्हार ॥
हाथी चढ़ के नउनिआ देत बुलाव आज रामललाकर नेहछू सब कोउ आव ॥
चारि पाटकर जाजिम झारि बिछाइ बैठी गोतिन सौचार तब मंगल गाइ ॥
केउ डारा चुटकी मुंदरिआ केउ डारा रूप केउ डारा रत्न पदारथ भरिगा है सूप ॥
भाई डारा चुटकी मुंदरिआ बहिन डारा रूप चाची डारा रत्न पदारथ भरिगा है सूप ॥
मंडवे में झगरै नउनिआ यह सब थोर राम ललाकर नेहछू लेबूँ मैं घोर ॥
मति झगर मति झगर नउनिआ नेहछू बटोर राम व्याहि घर ऐहैं देव मैं घोर ॥

जयंती का फुफेरा भाई होता है। नंगी तलवार लेकर खड़ा हुआ कि जिससे कोई बाहर का बाउ बतास न आवे। फिर नंदकिशोर की दुलहिन जो पद में भौजाई लगे, जयंती को गोद में लेकर बैठ गई। तब सात सुहागिनों ने मिल के गौर की पूजा की फिर नाइन ने धोबिन के शिर में तेल लगा के सिन्दूर पहिनाया और कहा कि अपना सुहाग जयंती को दो। तब धोबिन ने अपना नेग माँगा एक जोड़ा और 1 रुपया समधी ने भेज दिया और मैंने एक रुपया नेहछू में डाला और जितनी स्त्रियाँ थीं, सबों ने अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार आठ आने से दो पैसे तक नेहछू दिया। जब धोबिन अपना नेग पाके खुश हुई, तो अपनी नाँद के पानी से लड़की के शिर की लट धोई फिर इस प्रकार सुहाग देने लगी कि उसके माँथे में जो सिन्दूर लगा हुआ था, वही कन्या के माथे में घिस दिया, मानो उसने अपना सुहाग दे दिया। फिर धोबिन चली गई।

नेहछू की विधि

खार छूटने के समय खार की गीत गाई सोहाग देने के समय महतारी बहिन मौसी को छोड़ के सब नातेदारों की स्त्रियों के नाम से सोहाग माँगने की गीत गाई गई। इसके पीछे जब नाइन ने लड़की के शिर का मल मल के धोया और कहारिन नहवाने लगी उस समय सगरा की गीत गाई गई। जब कहारिन के सूप में नेहछू पड़ चुका तो उसने नहवा के पीली धोती पहिनाई। फिर लड़की कोहबर में गई। वहाँ से नाइन लड़की के हाथ में सिन्दूर की डिबिया चावल गुड़ रखके मँड़वे में लाई। तब मैं अंचल से आढ़ा के बैठी और नेहछू होने लगा नाइन ने गोड़ धोके महावर लगाया उस समय स्त्रियां यह गीत गाने लगीं। नेहछू गीत (बॉक्स में)

जब नेहछू हो चुका तो व्याह का आरंभ हुआ। कन्या कोहबर में गई और उसे सब गहना पहना दिया और बहुत से बरातियों समेत दूलह मंडप में आया और आँगन के बीच परदा कर दिया गया। परदा के बाहर बराती और भीतर घराती और दूलहा बैठा। जिस समय दूलह चौक पर बैठने लगा, उसके नीचे पान की चुंदरी बिछा दी गई और जयंती के बाप ने मानिक दिये से आरती उतारी और दही चांवल लेकर दूलह के माथे में टीका लगा दिया। तब पंडितों ने बेदारंभ पढ़ा और 4 टका पैसा नेग पाया फिर शाला की पढ़ाई में 20 टके पैसे मांगे परन्तु टके पाये तब बर के पांव से जूता उतारा गया फिर काष्टाशन अर्थात् हरदी से रंगे हुए काठ के पीढ़े पर जब वर बैठने लगा तो उसका नेग भी पुरोहित को पाँच पैसा मिला। जब बैठ चुका तो आम की पत्ती और कुश बर के हाथ में देकर कलशे में छुआया और पंडितों ने 'बिस्टरो बिस्टरो' पढ़ा और 3 टका पैसा

लिया। फिर एक दोने में जल भर के बर के हाथ में दिया और 'पाद्यं पाद्यं' पढ़ा। इसको 'पाद्य-बिस्टर' कहते हैं। इसमें भी पुरोहितों ने 11 भर चांदी मांगी, परन्तु 11 पैसे मिले। फिर उसी दौने के जल से वर का दाहिना और बावां पाँव धोया गया इसके उपरांत हमारे पुरोहित ने एक दोने में दूब, अक्षत, फल, जल, चंदन, रखके हाथ में लिया और 'अर्घो अर्घो' ऐसा पढ़ा और उस में से थोड़ा-सा अक्षत लेकर बर के माथे में लगाया उस अर्घपाच का जल ईशान कोण में फेंक दिया फिर इसी प्रकार दोने में जल लेकर दो बार आचमन कराया तिसके पीछे पीतल के कटोरे में दही मधु घी लेकर 'मधुपर्को मधुपर्को' पढ़ के वर के हाथ में दिया और उसने उस में उंगुली डुबो के मुख में लगा लिया। यह सब बातें व्यवहार और शिष्टाचार की हैं। पूर्व समय में रीति रही है कि जो कोई किसी के यहाँ आवे तो वह गृहस्थ 'अर्घ-पादार्थ मधुपर्क' से उसका सत्कार करे सो जब से वेदोक्त पुरानी रीत बंद हो गई। तब से यह बातें भी जाती रहीं। केवल ब्याह में यह रीत चली जाती है। पर इसका भावार्थ बहुत कम लोग समझते हैं।

जब मधुपर्क हो चुका तो आचमन कराके आचार्य ने मंत्र पढ़ के दूलह के सब अंगों को उसी के हाथ से स्पर्श कराया। फिर एक तृण खड़ाकर उसको तोड़के ईशान कोण में फेंक दिया। इसमें नाई को एक टका पैसा मिला। इसके अनंतर वेदी पर अग्निस्थापन हुआ और कोहबर से कन्या बुलाई गई। तब लालाजी ने कन्या को अपनी गोद में बैठा लिया और दो रंगी हुई धोती और दो छोटे-छोटे टुकड़े जिसको चून कहते हैं, वर को संकल्प दिया। सो एक धोती वर ने पहिनी, दूसरी कन्या को पहिनाई गई। जिस समय वर धोती पहिने लगा, सब स्त्रियों ने धोती की गीत गाई।

तिसके उपरांत परस्पर हुआ। दो छोटे कपड़े में दो बीड़े पान लपेट के एक कन्या के माथे पर रक्खा गया और दूसरा वर के हाथ में दिया गया। तब वर ने कन्या के माथे पर जो बीड़ा रक्खा हुआ था, उसे आप ले लिया और अपना पान कन्या के माथे पर रख दिया। इसी कर्मठ का नाम परस्पर है।

इसके उपरांत कन्यादान का समय आया तो हमारा और जयंती के बाप का गठबंधन हुआ। इसी अन्तर में शाखोच्चार होने लगा। पहिले दूलह के पंडित ने संस्कृत में दूलह के परपाजा, आजा, बाप की बड़ाई पढ़ी। इस प्रकार कि अमुक बड़े पंडित दान शील सूर बीर रहे, जिनका यह परपोता है और अमुक बड़े ऐश्वर्यवान् विख्यात कीर्ति राजमान्य हैं, जिनका यह पोता है और अमुक बड़े गुणज्ञ सज्जन सकल सौभाग्य सम्पन्न दयावान हैं, जिनका यह पुत्र है। इसी प्रकार हमारे पुरोहित ने तीन पीढ़ी की बड़ाई के साथ साखोच्चार किया कि ऐसे गुण विशिष्ट अमुक की परपोती और ऐसे गुण विशिष्ट अमुक की पोती और ऐसे गुणबिशिष्ट अमुक की बेटी है इश कर्मठ में दोनों ओर के पंडितों के को एक एक पगड़ी और एक एक रुपया दक्षिणा मिला इसके उपरांत आटे की लोई में एक रुपया चिपका के कन्या के हाथ पर धर दिया और कन्या का हाथ बर के हाथ पर रक्खा तब जयंती का बाप कुश जल लेकर कन्या का हाथ पकड़ के संकल्प करने लगे तो जयंती का भाई गडुआ लेकर ऊपर से पानी छोड़ने लगा। उस समय स्त्रियों ने कन्यादान की गीत गाई॥

महावीर मन्दिर समाचार

मन्दिर समाचार

(फरवरी, 2023ई.)

महावीर मन्दिर में सन्त शिरोमणि रविदास की जयंती, दि. 5 फरवरी, 2023ई.

महावीर मन्दिर प्रांगण में सन्त शिरोमणि रविदास की जयंती समारोहपूर्वक मनायी गयी। मन्दिर परिसर के उत्तरी भाग में स्थित सन्त रविदास की प्रतिमा पर माल्यार्पण और आरती के साथ कार्यक्रम की शुरुआत हुई। पंद्रहवीं सदी में जन्मे सन्त रविदास को याद करते हुए वक्ताओं ने एक सुर में कहा कि सामाजिक समरसता के प्रणेता के रूप में सन्त शिरोमणि रविदास को युग-युगांतर तक याद किया जाएगा। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि न्यायमूर्ति राजेन्द्र प्रसाद (अ.प्रा.) ने कहा कि सन्त रविदास की जयंती समारोहों की सार्थकता तभी होगी जब हम उनके विचारों को आत्मसात् करेंगे। "जात-पात पूछै नहीं कोई, हरि को भजे सो हरि को होई", इस उक्ति के रचयिता सन्त रामानन्दाचार्य के शिष्य सन्त रविदास ने जाति प्रथा से पीड़ित तब के समाज को एक रास्ता दिखाया था। जयंती समारोह को संबोधित करते हुए पूर्व विधि सचिव वासुदेव राम ने कहा कि सन्त रविदास ने अपने जीवन काल में जात-पात, ऊँच-नीच का भेद समाप्त करने का सन्देश दिया था। कार्यक्रम के संयोजक और महावीर मन्दिर की पत्रिका धर्मायण के सम्पादक पंडित भवनाथ झा ने इस अवसर पर कहा कि सन्त शिरोमणि रविदास ने जिस सामाजिक समरसता और एकता का सन्देश दिया था, वह आज भी प्रासंगिक है। सनातन धर्म के आस्था के केन्द्रों को भी इसी भावना को प्रोत्साहित करना चाहिए। साहित्यकार विष्णु प्रभाकर ने कहा कि सन्त कवि रैदास की रचनाओं में लोक जागरण, लोक यात्रा, लोक रंजन और लोक मंगल व्याप्त है। सन्त रविदास ने आत्मज्ञान की बात की थी। भक्तिकाल में "हरि बिनु जीवन कैसे..." उनका मूल सन्देश था। कार्यक्रम में वक्ता डॉ. कृष्ण कुमार ने कहा कि सन्त शिरोमणि ने जिस सामाजिक समरसता के साथ भक्ति की बातें की थीं, वह आज के कालखण्ड में भी उतनी ही प्रासंगिक हैं। सन्त घनश्याम दास हंस ने अपनी रचना "ऐसी लाल तुझ बिनु कौन करे" सुनायी। महावीर मन्दिर परिसर में आयोजित सन्त रविदास जयंती समारोह में बड़ी संख्या में भक्तगण भी उपस्थित थे। कार्यक्रम के अन्त में उनके बीच हलवा प्रसाद का वितरण किया गया। मंच संचालन पंडित भवनाथ झा और प्राणशंकर मजूमदार ने किया।

महावीर नेत्रालय में 77 लोगों का निःशुल्क मोतियाबिंद ऑपरेशन

दवाएँ, जाँच और चश्मा भी मुफ्त

महावीर मन्दिर न्यास द्वारा संचालित आँखों के सुपर स्पेशियलिटी अस्पताल महावीर नेत्रालय में 77 मरीजों के मोतियाबिंद का निःशुल्क ऑपरेशन किया गया। ऑपरेशन के पहले सभी जरूरी जाँच और ऑपरेशन के दौरान और उसके बाद सभी जरूरी दवाओं के साथ-साथ चश्मा भी निःशुल्क मुहैया कराया गया। अस्पताल के निदेशक डॉ. यू. सी. माथुर ने बताया कि 17 फरवरी और 10 फरवरी को दो चरणों में क्रमशः 38 और 39 मरीजों के

मोतियाबिंद ऑपरेशन किये गये। ऑपरेशन करनेवाली मेडिकल टीम में डॉ. विकास कुमार सिन्हा, डॉ. विशाल किशोर और डॉ. मुक्ता प्रसाद शामिल हैं। अमेरिका में रह रहे आप्रवासी बिहारी डॉ. अरविंद कुमार और डॉ. चित्रा के सौजन्य से विगत कई वर्षों से महावीर नेत्रालय द्वारा कैंप लगाकर मोतियाबिंद की निःशुल्क सर्जरी की जा रही है। डॉ. विकास कुमार सिन्हा ने बताया कि ऑपरेशन के बाद सारे मरीजों को काला चश्मा दिया गया। एक महीने बाद पावर का चश्मा दिया जाएगा। मरीजों को डेढ़ महीने की दवाइयां भी निःशुल्क दी गयी हैं। उनके एक दिन रुकने, खाने-पीने आदि का सारा इंतजाम महावीर आरोग्य संस्थान में किया गया। महावीर आरोग्य संस्थान परिसर में ही महावीर नेत्रालय का संचालन किया जा रहा है। वर्ष 2006 में इसकी स्थापना हुई थी। मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने आचार्य किशोर कुणाल की उपस्थिति में इसका उद्घाटन किया था। महावीर नेत्रालय में रेटिना, आँखों की थैली, पलक, आँखों का टेढ़ापन, बच्चों के आँखों की सर्जरी समेत आँखों की सभी बीमारियों के इलाज और सर्जरी की सुविधा रियायती दरों पर उपलब्ध है।

कैंप लगाकर मरीजों की स्क्रीनिंग

इसके पूर्व 5 फरवरी को नालंदा जिले के हिलसा के मई गाँव में कैंप लगाकर लगभग 400 लोगों के आँखों की जांच की गयी। इनमें से 122 लोगों में मोतियाबिंद पाया गया। उनमें से कुछ मरीजों को अन्य बीमारियों या शारीरिक कारणों से ऑपरेशन लायक नहीं पाया गया। आँख जांच शिविर में डॉ. संतोष कुमार, डॉ. इरफानुर रहमान, कृष्ण मुरारी प्रसाद, रंजन कुमार, ओमप्रकाश, ज्योति कुमारी आदि मौजूद थे।

महावीर वात्सल्य अस्पताल में 3 दिन की बच्ची का आहार-नाल तैयार किया गया।

डॉक्टरों की टीम ने बच्ची की जान बचाई

महावीर वात्सल्य अस्पताल में डॉक्टरों की टीम ने 3 दिन की बच्ची के खाने की नली बनाकर उसकी जान बचा ली। नवजात बच्ची के मुँह से झाग निकल रहा था। उसे साँस लेने में भी तकलीफ थी। उसे इमरजेन्सी हालात में अस्पताल में भर्ती कराया गया था। महावीर वात्सल्य अस्पताल के पेडिएट्रिक सर्जन डॉ. ओम पूर्वे ने बताया कि बच्ची के खाने की नली नहीं बनी थी। इसे मेडिकल टर्म में 'ट्रैकियो इसोफिजियल फिस्टुला' कहते हैं। ऐसे मामलों में नवजात को बचाना मुश्किल होता है। बिहार के सीमांचल से आयी बच्ची को वेंटिलेटर पर रखा गया। फिर थोड़ा स्थिर होने पर दूरबीन विधि से ऑपरेशन कर उसके खाने की नली बनायी गयी। डॉ. ओम पूर्वे ने बताया कि इस ऑपरेशन में सबसे बड़ी चुनौती वन लंग वेंटिलेशन की होती है। यानी एक ही फेफड़े से साँस देना होता है। महावीर वात्सल्य अस्पताल के निश्चेतना चिकित्सकों डॉ. गीता और डॉ. पुलक तोष के साथ पेडिएट्रिक सर्जन डॉ. राकेश के सहयोग से इस जटिल ऑपरेशन को सफलतापूर्वक अंजाम दिया गया। ऑपरेशन के बाद बच्ची सामान्य तरीके से दूध पीने लगी तो उसे अस्पताल से छुट्टी दे दी गई। डॉ. ओम पूर्वे ने बताया कि बड़े शहरों में ऐसे ऑपरेशन बहुत खर्चीले होते हैं। महावीर वात्सल्य अस्पताल में मात्र 20 हजार रुपये में यह ऑपरेशन किया गया है। महावीर मन्दिर न्यास के सचिव आचार्य किशोर कुणाल ने जटिल ऑपरेशन को सफलतापूर्वक अंजाम देने के लिए डॉक्टरों की टीम को बधाई दी है।

-महावीर मन्दिर के मीडिया प्रभारी श्री विवेक विकास

व्रत-पर्व

चैत्र, 2079-2080 वि. सं. (8 मार्च से 6 अप्रैल, 2023ई.)

पं. मुक्ति कुमार झा
ज्यौतिष परामर्शदाता, महावीर ज्योतिष मण्डप, महावीर मन्दिर, पटना

1. चैत्रकृष्ण प्रतिपदा बुधवार, **होली भस्मधारण (खेल),** दिनाक 08.03.2023 ई.।
   आज के दिन मिथिला मे सप्ताडोरा का पूजा आरम्भ होता है,
2. चैत्रकृष्ण चतुर्थी शनिवार **श्रीविकट चतुर्थी** दिनांक 11.03.2023ई.
3. चैत्रकृष्ण अष्टमी बुधवार मीन में सूर्य का प्रवेश, **रविषडशीतिसंक्रान्ति** दिनांक 15.03.2023ई.
   पुण्यकाल दि. 08:57 के बाद 03:21 तक
4. चैत्रकृष्ण एकादशी शनिवार **पापमोचिनी एकादशी व्रत** (सबके लिए), दिनांक 18.03.2023ई.
5. चैत्रकृष्ण त्रयोदशी रविवार गाय के घृत से एकादशी व्रत की पारणा, और **प्रदोष त्रयोदशी व्रत**, दिनांक 19.03.2023ई.
6. चैत्रकृष्ण चतुर्दशी सोमवार प्रदोष चतुर्दशी व्रतं, दिनांक 20.03.2023ई.
7. चैत्रकृष्ण अमावस्या मंगलवार, चैत्री, भौमवती अमावस्या, दिनांक 21.03.2023ई.
8. चैत्रशुक्ल शुक्रवार **नववर्ष विक्रम संवत् 2080 प्रारम्भ**, वासन्त नवरात्रारम्भ, दिनांक 22.03.2023ई.
   चैत्र मास के शुक्ल पक्षकी प्रतिपदा तिथि को चैती नवरात्र आरम्भ होता है। इस दिन से विक्रम संवत् 2080 का आरम्भ हो रहा है। हिन्दुओं के लिए यह नववर्ष का दिन है।
9. चैत्रशुक्ल चतुर्थी शनिवार, श्रीगणेश चतुर्थी व्रत, **चैती छठ का नहाय-खाय,** दिनांक 25.03.2023ई.
10. चैत्रशुक्ल पंचमी रविवार, **मीनावतार, श्रीरामराज्याभिषेकोत्सव, चैती छठ का खरना,** दिनांक 26.03.2023ई.
11. चैत्रशुक्ल षष्ठी सोमवार, सूर्यषष्ठी व्रत, **चैती छठ का सन्ध्याकालिक अर्घदान**, गजपूजा बिल्वाभिमन्त्रण, दिनांक 27.03.2023।
12. चैत्रशुक्ल सप्तमी मंगलवार, **चैती छठ का प्रातःकालिक अर्घदान**, दुर्गापूजा का पट खुलना तथा पत्रिका-प्रवेश, **महारात्रि-निशापूजा** दिनांक 28.03.2023।
13. चैत्रशुक्ल अष्टमी बुधवार, **महाअष्टमी व्रत,** दिनांक 29.03.2023ई.

14. चैत्रशुक्ल नवमी गुरुवार, **महानवमी व्रत, श्रीरामनवमी व्रत**, दिनांक 30.03.2023।

धर्मशास्त्र के अनुसार रामनवमी मध्याह्न-व्यापिनी व्रत है। इस वर्ष पूर्व दिन बुधवार की रात्रि 10 बजकर 11 मिनट से गुरुवार को रात्रि 12.02 मिनट तक नवमी तिथि है। इस प्रकार गुरुवार को दिनभर नवमी तिथि है और पुनर्वसु नक्षत्र भी गुरुवार के दिनभर है। अतः गुरुवार को रामनवमी में कोई मतान्तर नही है।

15. चैत्र शुक्ल दशमी शुक्रवार, **विजया दशमी, अपराजिता पूजा, देवीविसर्जन जयन्ती-धारण,** दिनांक 31.03.2023ई.

16. चैत्र शुक्ल एकादशी शनिवार, **कामदा एकादशी व्रत** (सबके लिए), दिनांक 01.04.2023.

17. चैत्र शुक्ल द्वादशी रविवार, गाय के घृत से एकादशी व्रत का पारण, **श्रीगोविन्द द्वादशी**, दिनांक 02.04.2023।

18. चैत्र शुक्ल त्रयोदशी सोमवार, **प्रदोष त्रयोदशी व्रत श्रीमहावीर जयन्ती**, दिनांक 03.04.2023ई.

19. चैत्र शुक्ल त्रयोदशी उपरान्त चतुर्दशी मंगलवार, **प्रदोष चतुर्दशी व्रत,** दिनांक 04.04.2023ई.

20. चैत्र शुक्ल चतुर्दशी उपरान्त पूर्णिमा बुधवार, पूर्णिमा व्रत, दिनांक 05.04.2023ई.

21. चैत्र शुक्ल पूर्णिमा गुरुवार, चैत्री पूर्णिमा, स्नानदानादि पूर्णिमा, दिनांक 06.04.2023ई.

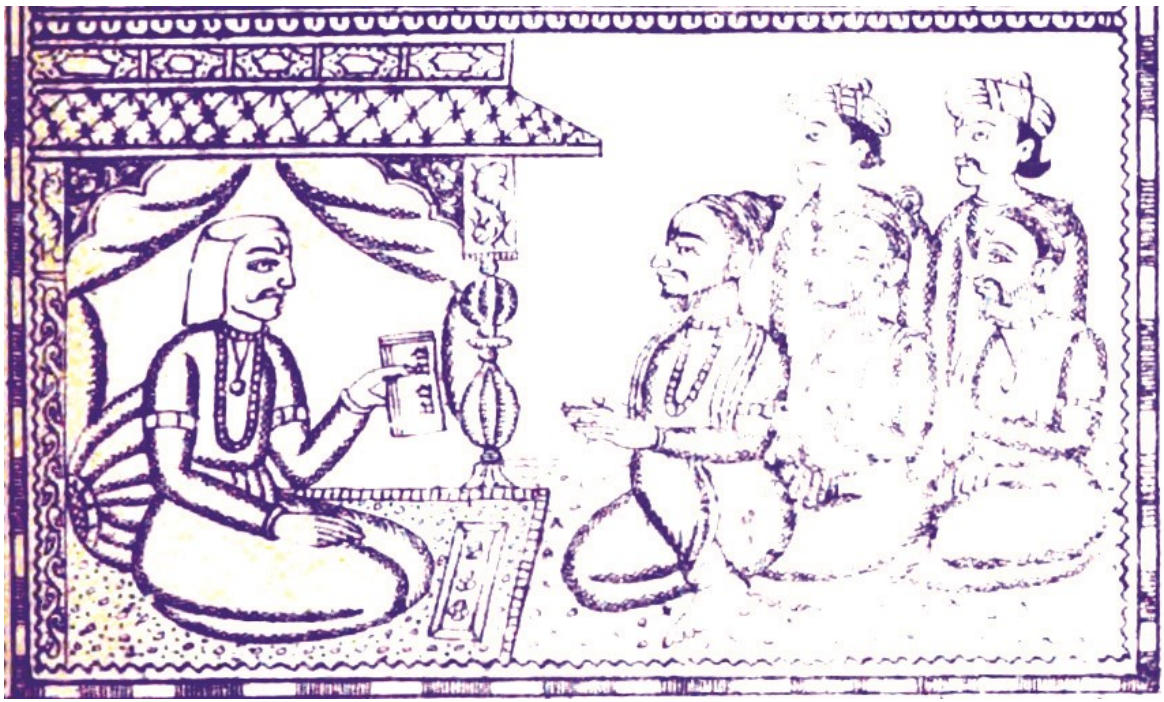

सन् 1881 ई. में नवलकिशोर प्रेस से प्रकाशित रामचरितमानस में तुलसीदासजी का काल्पनिक चित्र

रामावत संगत से जुड़ें

1) रामानन्दाचार्यजी द्वारा स्थापित सम्प्रदाय का नाम रामावत सम्प्रदाय था। रामानन्द-सम्प्रदाय में साधु और गृहस्थ दोनों होते हैं। किन्तु यह रामावत संगत गृहस्थों के लिए है। रामानन्दाचार्यजी का उद्घोष वाक्य– 'जात-पाँत पूछ नहीं कोय। हरि को भजै सो हरि को होय' इसका मूल सिद्धान्त है।

2) इस रामावत संगत में यद्यपि सभी प्रमुख देवताओं की पूजा होगी, किन्तु ध्येय देव के रूप में सीताजी, रामजी एवं हनुमानजी होंगे। हनुमानजी को रुद्रावतार मानने के कारण शिव, पार्वती और गणेश की भी पूजा श्रद्धापूर्वक की जायेगी। राम विष्णु भगवान् के अवतार हैं, अतः विष्णु भगवान् और उनके सभी अवतारों के प्रति अतिशय श्रद्धाभाव रखते हुए उनकी भी पूजा होगी। श्रीराम सूर्यवंशी हैं, अतः सूर्य की भी पूजा पूरी श्रद्धा के साथ होगी।

3) इस रामावत-संगत में वेद, उपनिषद् से लेकर भागवत एवं अन्य पुराणों का नियमित अनुशीलन होगा, किन्तु गेय ग्रन्थ के रूप में रामायण (वाल्मीकि, अध्यात्म एवं रामचरितमानस) एवं गीता को सर्वोपरि स्थान मिलेगा। 'जय सियाराम जय हनुमान, संकटमोचन कृपानिधान' प्रमुख गेय पद होगा।

4) इस संगत के सदस्यों के लिए मांसाहार, मद्यपान, परस्त्री-गमन एवं परद्रव्य-हरण का निषेध रहेगा। रामावत संगत का हर सदस्य परोपकार को प्रवृत्त होगा एवं परपीड़न से बचेगा। हर दिन कम-से-कम एक नेक कार्य करने का प्रयास हर सदस्य करेगा।

5) भगवान् को तुलसी या वैजयन्ती की माला बहुत प्रिय है अतः भक्तगण को इसे धारण करना चाहिए। विकल्प में रुद्राक्ष की माला का भी धारण किया जा सकता है। ऊर्ध्वपुण्ड्र या ललाट पर सिन्दूरी लाल टीका (गोलाकार में) करना चाहिए। पूर्व से धारित तिलक, माला आदि पूर्ववत् रहेंगे। स्त्रियाँ मंगलसूत्र-जैसे मांगलिक हार पहनेंगी, किन्तु स्त्री या पुरुष अनावश्यक आडम्बर या धन का प्रदर्शन नहीं करेंगे।

6) स्त्री या पुरुष एक दूसरे से मिलते समय राम-राम, जय सियाराम, जय सीताराम, हरि -जैसे शब्दों से सम्बोधन करेंगे और हाथ मिलाने की जगह करबद्ध रूप से प्रणाम करेंगें।।

7) रामावत संगत में मन्त्र-दीक्षा की अनूठी परम्परा होगी। जिस भक्त को जिस देवता के मन्त्र से दीक्षित होना है, उस देवता के कुछ मन्त्र लिखकर पात्र में रखे जायेंगे। आरती के पूर्व गीता के निम्नलिखित श्लोक द्वारा भक्त का संकल्प कराने के बाद उस पात्र को हनुमानजीके गर्भगृह में रखा जायेगा।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।। (गीता, 2.7)

8) आरती के बाद उस भक्त से मन्त्र लिखे पुर्जा में से कोई एक पुर्जा निकालने को कहा जायेगा। भक्त जो पुर्जा निकालेगा, वही उस भक्त का जाप्य-मन्त्र होगा। मन्दिर के पण्डित उस मन्त्र का अर्थ और प्रसंग बतला देंगे, बाद में उसके जप की विधि भी। वही उसकी मन्त्र-दीक्षा होगी। इस विधि में हनुमानजी परम-गुरु होंगे और वह मन्त्र उन्हीं के द्वारा प्रदत्त माना जायेगा। भक्त और भगवान् के बीच कोई अन्य नहीं होगा।

9) रामावत संगत से जुड़ने के लिए कोई शुल्क नहीं है। भक्ति के पथ पर चलते हुए सात्त्विक जीवन-यापन, समदृष्टि और परोपकार करते रहने का संकल्प-पत्र भरना ही दीक्षा-शुल्क है। आपको सिर्फ https://mahavirmandirpatna.org/Ramavat-sangat.html पर जाकर एक फार्म भरना होगा। मन्दिर से सम्पुष्टि मिलते ही आप इसके सदस्य बन जायेंगे।

***

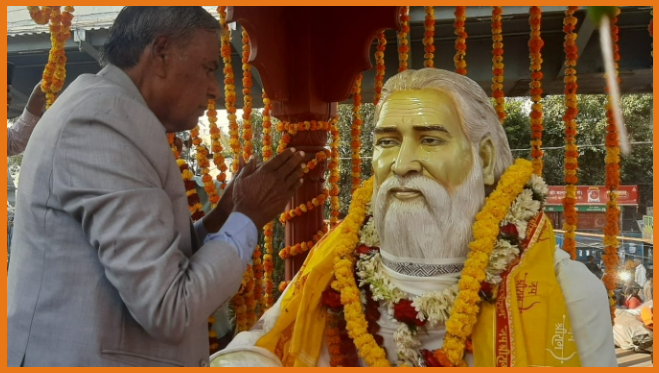

सन्त रविदास जयन्ती के अवसर पर महावीर मन्दिर परिसर में स्थापित प्रतिमा पर माल्यार्पण करते अतिथिगण

नेत्र-चिकित्सा शिविर में

पत्रिका-पंजीयन सं. 52257/90

विक्रम संवत् 2079 में प्रकाशित 'धर्मायण' के विशेषांक

सभी अंक ***online*** उपलब्ध हैं-

https://mahavirmandirpatna.org/dharmayan/

श्री महावीर स्थान न्यास समिति के लिए वीर बहादुर सिंह, महावीर मन्दिर, पटना- 800001 से ई-पत्रिका के रूप में https://mahavirmandirpatna.org/dharmayan/ पर निःशुल्क वितरित। सम्पादक : भवनाथ झा।